ॐ

श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

—श्री निरञ्जनपीठाधीश्वर
यतीन्द्र
स्वामी कृष्णानन्दगिरिजी महाराज
आचार्य महामण्डलेश्वर

ॐ

श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्

स्वामीजी से मुझे प्राप्त

श्रीनिरञ्जनपीठाधीश्वर आचार्यमहामण्डलेश्वर
श्री श्री १००८ यतीन्द्र स्वामी
श्री कृष्णानन्द गिरिजी महाराज
द्वारा प्रकाशित

स्वामीजी से मुझे प्राप्त

वि २०३८
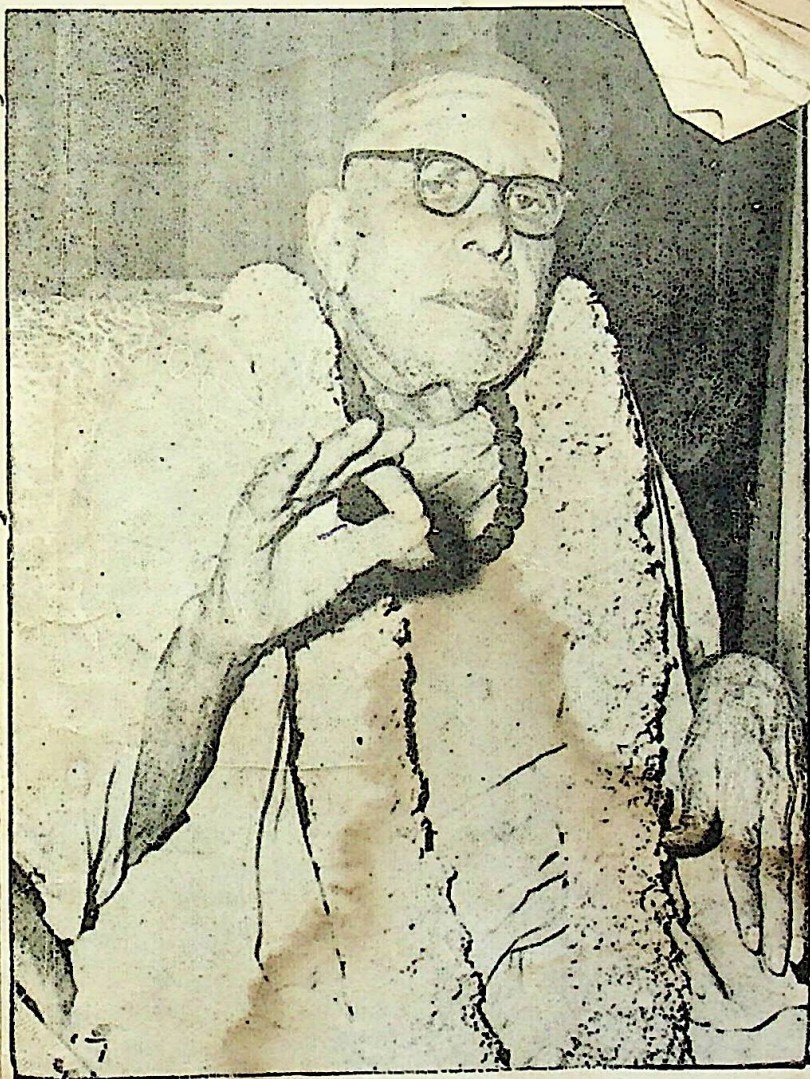
श्री श्री १००८ आचार्यमहामण्डलेश्वर
ब्रह्मीभूत
श्री स्वामी नृसिंह गिरि जी महाराज

श्री शिव आरती

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरूबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश
शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं
त्वं मां पालय शंभो कृपया जगदीश ॥
ॐ हर हर हर महादेव ।

कैलासे गिरिशिखरे कल्पद्रुमविपिने शिव कल्प०
गुञ्जति मधुकरपुञ्जे गुञ्जति मधुकरपुञ्जे कुञ्जवने गहने ।
कोकिल कूजति खेलति हंसावलि ललिता शिव हंसा०
रचयति कलाकलापं रचयति कलाकलापं नृत्यति मुदसहिता ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ १ ॥

तस्मिंल्ललितसुदेशे शालामणि रचिता शिवशाला०
तन्मध्ये हरनिकटे तन्मध्ये शिवनिकटे गौरी मुदसहिता ।
क्रीडां रचयति भूषां रञ्जित निजमीशं शिव रञ्जित०
इन्द्रादिकसुरसेवित ब्रह्मादिकसुरसेवित प्रणमति ते शीर्षम् ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ २ ॥

विबुधवधूर्बहु नृत्यति हृदये मुदसहिता शिव हृदये०
किन्नर गायन कुरुते किन्नर गायन कुरुते सप्तस्वर सहिता ।
धिनकत थै थै धिनकत मृदङ्ग वादयते शिव मृदङ्ग०
क्वण क्वण ललिता वेणु क्वण क्वण ललिता वेणु मधुरं नादयते ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ ३ ॥

रुण रुण चरणे रचयति नूपुरमुज्ज्वलितं शिव नूपुर०
चक्रावर्ते भ्रमयति चक्रावर्ते भ्रमयति कुरुते तांधिकताम् ।
तां तां लुप चुप तालं नादयते शिव तालं०
अङ्गुष्ठाङ्गुलिनादं अङ्गुष्ठाङ्गुलिनादं लास्यकतां कुरुते ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ ४ ॥

कर्पूरद्युतिगौरं पञ्चाननसहितं शिवपञ्चा०
त्रिनयनशशिधरमौलिः त्रिनयनशशिधरमौलिःविषधरकंठयुतम् ।
सुन्दरजटाकलापं पावकयुतभालं शिव पावकशशिभालं
डमरुत्रिशूलपिनाकं डमरुत्रिशूलपिनाकं करधृतनृकपालम् ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ ५ ॥

शंखनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते शिव झल्लरि०
नीराजयते ब्रह्मा नीराजयते विष्णुर्वेदऋचां पठते ।
इति मृदुचरणसरोजं हृदिकमले धृत्वा शिव हृदि०
अवलोकयति महेशं शिवलोकयति सुरेशं इशं ह्यभि..नत्वा ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ ६ ॥

रुण्डैः रचयति मालां पन्नगमुपवीतं शिव पन्न०
वामविभागे गिरिजा वामविभागे गौरी रूपं अतिललितम् ।
सुन्दर सकलशरीरे कृतभस्माभरणं शिव कृत०
इति वृषभध्वजरूपं हर शिवशंकररूपं तापत्रयहरणम् ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ ७ ॥

ध्यानं आरती समये हृदये इतिकृत्वा शिव हृदये०
रामं त्रिजटानाथं शंभु त्रिजटानाथं ईशं ह्यभिनत्वा ।
संगीतमेवं प्रतिदिनपठनं यः कुरुते शिव पठनं०
शिवसायुज्यं गच्छति हरसायुज्यं गच्छति भक्त्या यः शृणुते ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥ ८ ॥

ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश
शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं
त्वं मा पालय शम्भो कृपया जगदीश ॥
ॐ हर हर हर महादेव ।

ॐ शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

अर्थ—शान्त रूप, शेषनाग पर सोने वाले, नाभि में कमल वाले, सारे देवताओं के अधिपति, समस्त लोकों के आधार, आकाश के समान व्यापक, वादल के रंग वाले, सुन्दर अवयवों वाले, लक्ष्मी के पति, कमल के समान नेत्र वाले, योगियों के ध्येय, संसार रूपी दुःख को दूर करने वाले, सारे लोकों के नाथ भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ।

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥

पार्वती के प्राणवल्लभ, देवताओंके आदिगुरु, संसार को उत्पन्न करने वाले, सर्परूपी गहनों वाले, हाथ में मृग को रखने वाले, जीवरूपी पशुओं के अधीश्वर, सूर्य चन्द्र और अग्नि का तीन नेत्र में धारण करने वाले, भगवान् विष्णु को प्रिय, भक्तजनों के आश्रय और उनकी सफल कामनाओं को पूर्ण करने वाले मङ्गलमय भगवान् शंकर को अत्यन्त नमस्कार करता हूँ।

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं सांकुशं वामभागे
नानालङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ।।

मन को पूर्ण स्थिर किये हुए, पद्मासन में बैठे हुए, चन्द्रमा को मुकुट बनाये हुए, ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात रूपी पाँच मुखवाले, तीन आँखों वाले, दाहिने हाथों में शूल, वज्र, तलवार, फरसा और अभय मुद्रा एवं वायें हाथों में सर्प, पाश, घण्टा, डमरु और अङ्कुश धारण करने वाले, अनेक अलंकारों से सुशोभित, स्फटिकमणि के समान वर्ण वाले पार्वतीपति भगवान् शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ ।

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ।।

कर्पूर के रङ्ग वाले, करुणा के अवतार, संसार के सारतत्त्व, सर्पराज को गले का हार बनाने वाले, पार्वती के साथ हमेशा हृदयकमल में रहने वाले भगवान् शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवर-शाखा-लेखनीं पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।

(इसका अर्थ महिम्नःस्तोत्र के ३२वें श्लोक के नीचे देखें)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।
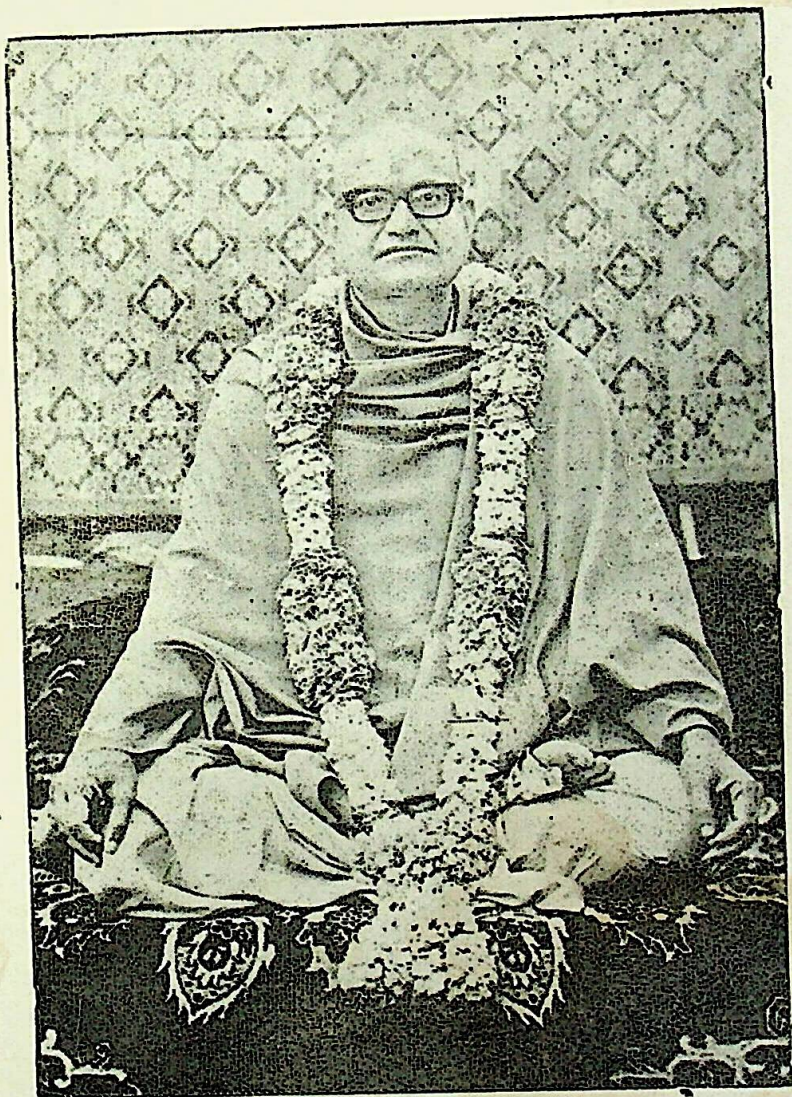
श्री श्री १००८ आचार्यमहामण्डलेश्वर
श्री स्वामी महेशानन्द गिरि जी महाराज

हे परमेश्वर ! आप ही हमारे माता, पिता, मित्र, विद्या, धन हैं—थोड़े में आप ही हमारे सब कुछ हैं।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विदितमविदितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे ! श्रीमहादेव ! शम्भो !

हे महादेव ! हाथ, पैर, वाणी, शरीर, कर्म, कान, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों या मन से जानकर या अनजान में किये हुए सभी अपराधों को आप क्षमा करें। हे करुणा के समुद्र शिवजी ! आपकी जय हो।

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥

हे भक्तगण ! चन्द्र से प्रकाशित सिरवाले, कामदेव के नाश करनेवाले सिर में गंगा को धारण करनेवाले, सर्पों का हार और कुण्डल पहननेवाले अग्निरूपी तीसरी आंखवाले, गजचर्म का सुन्दर परिधान करनेवाले, तीनों लोकों के सार रूप, पापों को हरनेवाले भगवान् शंकर में मोक्ष की प्राप्ति के लिए अपने मन को स्थिर करिये। दूसरे कर्मों से कोई भी लाभ नहीं है।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

हम उस परमात्माको जानें और उनका ध्यान करें ऐसा वे हमें प्रेरित करें।

मन्त्रपुष्पाञ्जलि

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्यास्सन्ति देवाः ॥

देवसदृश महापुरुषों ने पूजा, दान यज्ञादि के द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करके उन प्रधान धर्मों के आचरण के द्वारा महान् स्वर्ग पद को प्राप्त किया, जहाँ कि पहले की साधना के फलस्वरूप देवगण जाते हैं।

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे।
समे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु।
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः।

बलपूर्वक अपनी आज्ञा को मनानेवाले राजाधिराज कुबेर को हम नमस्कार करते हैं। वे कामनाओं को पूर्ण करनेवाले कुबेर मेरी कामनाओं को पूर्ण करें। विश्रवा के पुत्र महाराज कुबेर को नमस्कार है।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

सारे ही प्राणियों की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों वाला परमेश्वर पशु-मनुष्यादि को हाथों पैरों से एवं पक्षि पतंगादि को परों से युक्त करता है। उनके रहने का स्थान जमीन आकाशादि भी वही एक परमात्मा बनाता है।

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ! ॥

मेरे द्वारा दिये हुए समयानुकूल उत्पन्न अनेक प्रकार की सुगन्धिवाले पुष्पों को और पुष्पाञ्जलि को हे महादेव ! आप ग्रहण करिये।
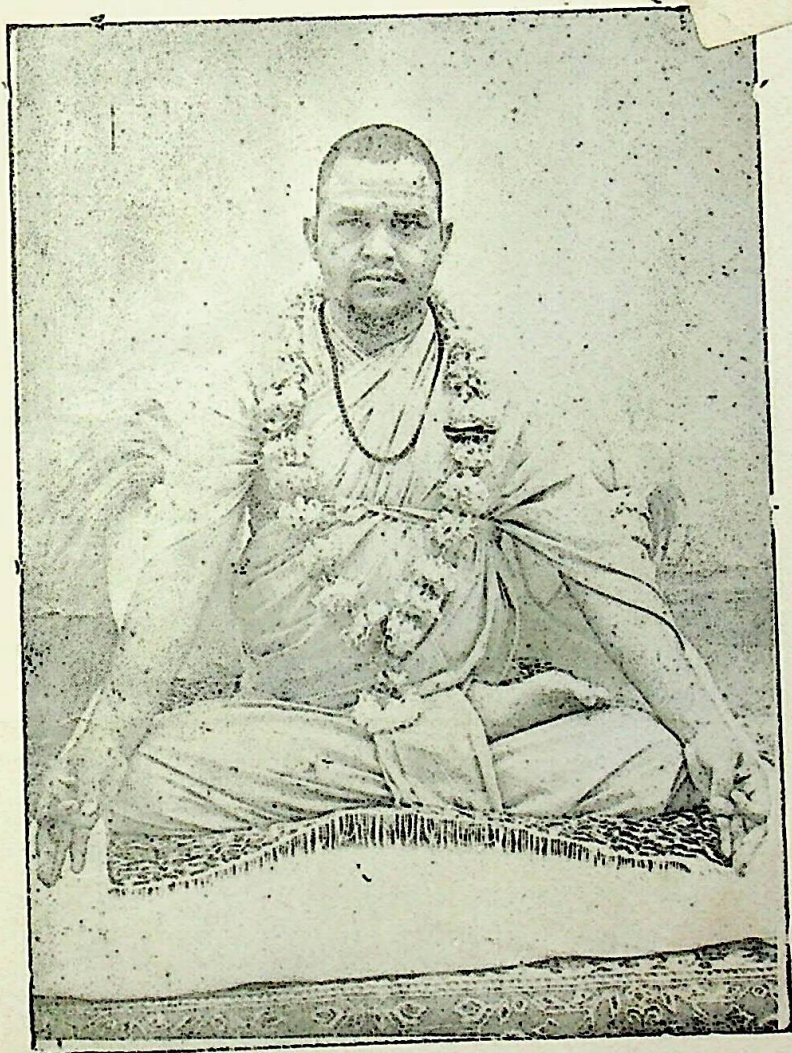
श्री श्री १००८ आचार्यमहामण्डलेश्वर
श्री स्वामी यतीन्द्र कृष्णानन्द गिरि जी महाराज
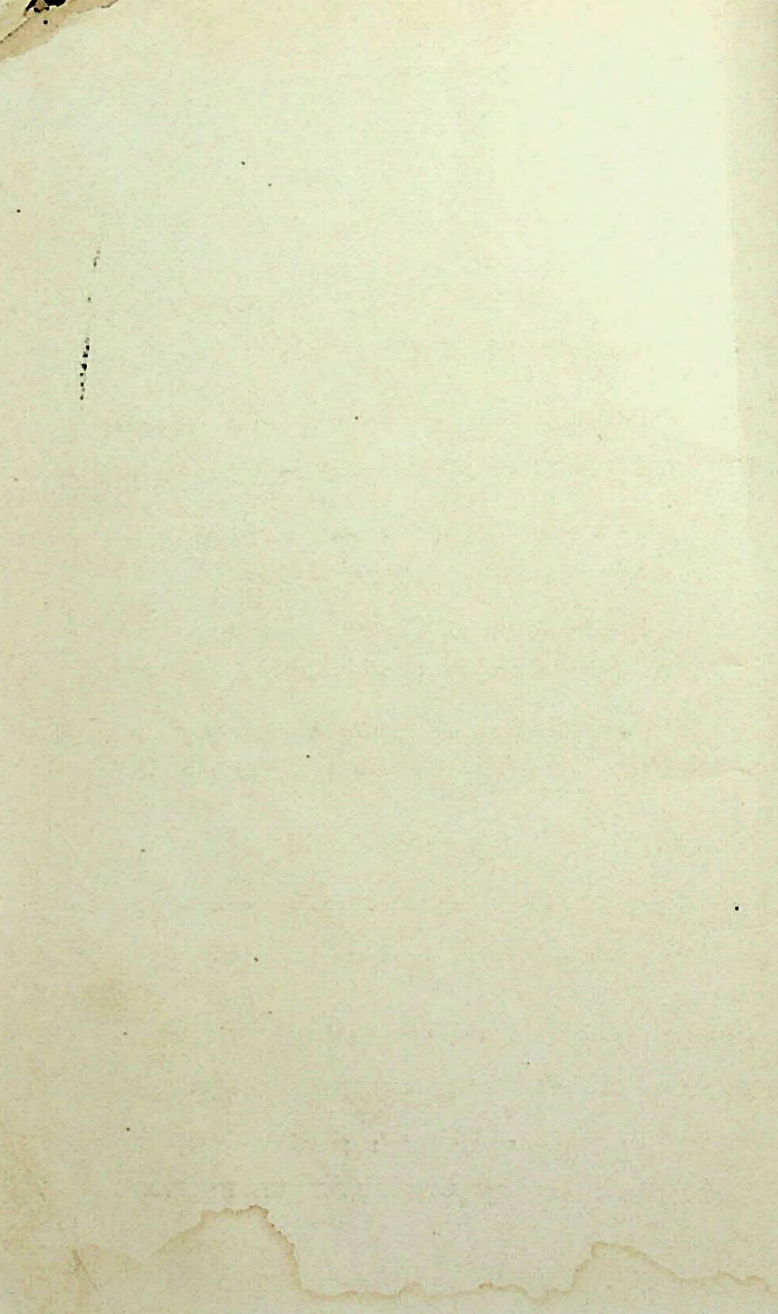
यति पूजा मन्त्र

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः । स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः । स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

वासनाद् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

ॐ वेदान्त-विज्ञान-सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

आचार्यपुष्पाञ्जलि

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरूबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥१॥

विष्णुब्रह्मेन्द्रदेवैः रजतगिरितटात्प्रार्थितो योऽवतीर्य
शाक्याद्युद्दामकण्ठीरवनखरकराघातसञ्जातमूर्च्छाम् ।
छन्दोधेनुं यतीन्द्रः प्रकृतिमगमयत् सूक्तिपीयूषवर्षैः
सोऽयं श्रीशङ्करार्यो भवदवदहनात्पातु लोकानजस्रम् ॥२॥

(सान्वयार्थं)

शब्द		अर्थ
यः	=	जो (दक्षिणामूर्ति भगवान् सदाशिव)
विष्णुब्रह्मे-न्द्रदेवैः	=	भगवान् विष्णु प्रजापति ब्रह्मा देवराज इन्द्र आदि द्वारा
प्रार्थितः	=	अनुनय पूर्वक आवेदन करने पर
रजतगिरि-तटात्	=	कैलास पर्वत से
अवतीर्य	=	आकर (पृथ्वी पर अवतार लेकर)
सूक्ति-पीयूष वर्षैः ।	=	भाष्य प्रकरणादि-रूपी अमृत की वर्षा से
शाक्याद्युद्दाम-कण्ठीरवन-खरकराघात-संजातमूर्च्छाम्	=	बौद्ध, जैन, चार्वाक, कापालिक, पाञ्चरात्र आदि नास्तिकों रूपी सिंहों के नाखून वाले पञ्जों से बेहोश हुई
छन्दोधेनुम्	=	वेदरूपी गाय को
प्रकृतिम्	=	पुनः पूर्व स्वाभाविक प्रतिष्ठा को (पुनर्जीवित किया)
अगमयत्	=	ले गये
अयम्	=	ये
सः	=	प्रसिद्ध (स्वनामधन्य)
यतीन्द्रः	=	परमहंस संन्यासियों के मूर्धन्य
श्रीशङ्क-रार्यः	=	श्री शङ्करभगवत् पादाचार्य
लोकान्	=	समस्त लोकों को लोकों में रहनेवाले प्राणियों को
भव-दव दहनात्	=	जन्म मरणादि रूपी आग की जलन से
अजस्रम्	=	हमेशा
पातु	–	बचायें

[जब सनातन धर्म बौद्ध, जैन, चार्वाकादि नास्तिकों के आघात से लुप्तप्राय हो गया और देवताओं की पूजा यज्ञादि बन्द हो गये तो उन्होंने अपनी रक्षा के लिए भगवान् शंकर से कातर होकर प्रार्थना की । दयामय प्रभु ने आचार्य कुमारलभट्ट के रूप में अपने पुत्र कार्तिकेय स्वामी को भेजकर वेदों के पूर्व काण्ड का उद्धार करवाया और फिर स्वयं शंकराचार्य रूप से अवतार लेकर उत्तरकाण्ड का उद्धार किया ।

पूर्णः पीयूषभानुर्भवमरुतपनोद्दामतापाकुलानाम्
प्रौढाज्ञानान्धकारावृतविषमपथभ्राम्यतामंशुमाली ।
कल्पः शाखी यतीनां विगतधनसुतादीषणानां सदा नः
पायाच्छ्रीपद्मपादादिममुनिसहितः श्रीमदाचार्यवर्यः ॥३॥

भव-मरुतप-नोद्दामतापा-कुलानाम् = जनम मरण रूपी मरूभूमि में आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविकादि तीनों ज्वरों के भीषण ताप से घबराये हुए लोगों के लिए

पूर्णः = पूर्ण

पीयूषभानुः = चन्द्रमा (सभी ज्वरों की शान्ति-रूपी अमृतवर्षक)

प्रौढाज्ञाना-न्धकारावृत-विषमपथ-भ्राम्यताम् = बहुत गाढ़ अज्ञान रूपी अन्धकार से ढके हुए भयानक रास्तों में भटकते हुए के लिए

अंशुमाली = सूर्य (अज्ञान नाशक ज्ञान स्वरूप)

विगत-धन-सुतादीषणा-नाम् = धन-घर-स्त्री आदि-समस्त लौकिक इच्छाओं को छोड़ने वाले

यतीनाम् = परमहंस परिव्राजकों के लिए

कल्पः शाखी = कल्पवृक्ष (की तरह उनकी सारी भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाले)

श्रीपद्मपादा-दिममुनिस-हितः = श्रीपद्मपादाचार्य आदि अपने सभी शिष्यों के साथ

श्रीमत् = ब्रह्मविद्या रूपी धन वाले

आचार्यवर्यः = आचार्यों में श्रेष्ठ (श्री भाष्यकार)

नः = हमारी

सदा = हमेशा

पायात् = रक्षा करें

[सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे के साथ कभी नहीं रहते परन्तु भगवान् भाष्यकार में दोनों एक साथ ही हैं क्योंकि ब्रह्मानन्द रूपी अमृत और ज्ञान-रूपी प्रचण्ड भास्कर दोनों ही एकत्र हैं। उसी प्रकार इच्छा रहितों की इच्छापूर्ण करने वाले हैं। यह विरोधाभास है।]

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥४॥

ब्रह्मानन्दम्	= अनन्त आनन्द स्वरूप	एकम्	= किसी भी अवयव से रहित
परमसुखदम्	= मोक्षरूपी निरतिशय सुख को देने वाले	नित्यम्	= भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल में एकसे रहनेवाले
केवलम्	= अज्ञान और उनके कार्य से अछूत	विमलम्	= दोष रहित
		अचलम्	= सारी क्रियाओं से रहित
ज्ञानमूर्तिम्	= ज्ञानरूपी शरीरवाले		
द्वन्द्वातीतम्	= राग-द्वेष, काम-क्रोध इत्यादि जोड़ों से रहित	सर्वधीसाक्षिभूतम्	= समस्त बुद्धियों के साक्षी रूप
		भावातीतम्	= जन्म रहित
गगनसदृशम्	= आकाश के समान सर्वत्र व्यापक	त्रिगुणरहितम्	= सत्त्व, रज और तमोगुण से रहित
तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्	= जीव और ईश्वर की एकता प्रतिपादित करने वाले वैदिक वाक्यों के अर्थ रूप	तम्	= उन
		सद्गुरुम्	= सद्गुरु को
		नमामि	= मैं प्रणाम करता हूँ।

नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।
श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यं
तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून्सन्ततमानतोऽस्मि ।।५।।

नारायणम्	=	भगवान् नारायण
पद्मभवम्	=	भगवान् ब्रह्मा ये दोनों देवताओं में अद्वैत ज्ञान के प्रवर्तक हैं ।
वसिष्ठम्	=	महर्षि वसिष्ठ ये ऋषियों में श्रेष्ठ अद्वैतवादी हैं। योग-वसिष्ठ महारामायण में आदि कवि वाल्मीकि ने आपके राम के प्रति किये हुए उपदेशों को संग्रह किया है ।
शक्तिम्	=	ब्रह्मर्षि शक्ति (सत्य-युग के वेदान्ताचार्य)
च	=	और
तत्पुत्रपरा-शरम्	=	उनके पुत्र ब्रह्मर्षि पराशर (त्रेतायुग के वेदान्ताचार्य)
च	=	और
व्यासम्	=	भगवान् कृष्ण-द्वैपायन वेद-व्यास (द्वापर युग के वेदान्ताचार्य, ब्रह्म-सूत्र के प्रणेता एवं पुराणों और महाभारत द्वारा वेदान्त रहस्य को सुगम करने वाले)
शुकम्	=	परमहंस श्री शुकदेवजी (अद्वैत के मूर्तरूप)
महान्तम् गौडपदम्	=	भगवान् गौड़पादाचार्य (कलियुग में वेदान्त के प्रथम आचार्य, माण्डूक्योपनिषद पर कारिकाओं के कर्ता)
गोविन्द-योगीन्द्रम्	=	संन्यासी मण्डल के अधीश्वर गोविन्द-पादाचार्यजी

अथ = और इनके वाद
अस्य = इनके
शिष्यम् = शिष्य
श्री शङ्कराचार्यम् = भगवान् सदाशिव के साक्षात् अवतार श्री शङ्करभगवत्पादाचार्य
अथ = और
अस्य = इनके
शिष्यम् = (प्रधान) शिष्यगण
पद्मपादम् = पद्मपादाचार्य (आपका नाम "आचार्य सनन्दन वन" है, ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर "पञ्चपादिका" नामक टीका के बनानेवाले होने से आपको पञ्चपादिकाचार्य भी कहते हैं आप भगवान् विष्णु के अवतार हैं।)
हस्तामलकम् = हस्तामलकाचार्य (आपका नाम "आचार्य पृथ्वीधर तीर्थ" है। आपका "हस्तामलकस्तोत्र" वेदान्त की अति प्रौढ रचना है।)
तोटकम् = तोटकाचार्य (आपका नाम "आचार्य आनन्दगिरि" है। गुरु सेवा से ही आपको समस्त विद्या की प्राप्ति हुई थी। तोटकछन्द में ही "श्रुतिसारसमुद्धरण" आदि ग्रन्थों को बनाने के कारण आपको तोटकाचार्य कहते हैं। आप देवगुरु बृहस्पति के अवतार हैं)
च = और
तम् = उस स्वनामधन्य
वार्तिककारम् = सुरेश्वराचार्य (आपका नाम "आचार्य विश्वरूप भारती" है भगवान् ब्रह्मा के अवतार होने से आप 'सुरेश्वर' नाम

से ही प्रसिद्ध हैं : वृहदारण्यकभाष्य और तैत्तरीयभाष्य आदि पर "वार्तिक" लिखने के कारण आपको वार्तिककार भी कहते हैं)

च = और

अन्यान् = अन्य सभी वेदान्त सम्प्रदायाचार्य

अस्मद्गुरून् = हमारे गुरु लोगों को

सन्ततम् = नित्य निरन्तर

आनतः = मन से, वाणी से और शरीर से नमस्कार करता

अस्मि = हूँ ।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥६॥

यः = जो (परमात्मा)

निद्रया इव = निद्रा दोष की तरह

मायया = माया की अघटित घटना शक्ति के द्वारा

आत्मनि = आत्मा में

निजान्तर्गतम् = अपने अन्दर ही होने वाले

विश्वम् = संसार को

बहिः = अपने से बाहर

उद्भूतम् = उत्पन्न हुए

यथा = की तरह

दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यम् = शीशे में दिखने वाले शहर के समान

पश्यन् = देखता हुआ

प्रबोधसमये = जागने पर (ज्ञान हो जाने पर)

अद्वयम् = अखण्ड और भेद रहित

एव = ही

स्वात्मानम् = अपने आपका प्रत्यक्षानुभाव करता है

तस्मै = उन वेदान्त और संन्यासियों के प्रथम आचार्य

श्रीगुरुमूर्तये = गुरु रूपधारी

श्रीदक्षिण-मूर्तये = श्रीदक्षिणामूर्ति भगवान् का

इदम् = यह

नमः = हमारा किया हुआ नमस्कार स्वीकार हो ।

[सृष्टि के आदि में सनत्कुमारों ने निवृत्तिमार्ग जा आश्रय लिया । वे जब भगवान् सदाशिव को गुरु बनाने के लिए गये तो भगवान् ने दक्षिणामूर्ति रूप लेकर उन्हें चिन्मुद्रा से उपदेश दिया । अतः वे ही निवृत्ति मार्ग के प्रवर्तक परमहंस परिव्राजकाचार्य हैं ।]

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।७।।

येन = जिसने

अखण्डमण्ड-लाकारम् = सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को

चराचरम् = और उसके अन्दर के समस्त जड़ चेतन को

व्याप्तम् = व्याप्त किया है

तत्पदम् = उस परम पद (ब्रह्म) को

येन = जिन्होंने

दर्शितम् = मुझे प्रत्यक्ष दिखला दिया

तस्मै = उन

श्री गुरवे = श्री गुरुदेव को

नमः = (मेरा) सर्व भाव से नमस्कार है ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।८।।

गुरु = गुरु
ब्रह्मा = ब्रह्मा (शिष्य को उपदेश द्वारा आत्म-साक्षात्कार उत्पन्न कराने वाले) हैं।
गुरुः = गुरु
विष्णुः = विष्णु (उत्पन्न हुए साक्षात्कार की वादी प्रतिवादियों से रक्षा करने वाले) हैं।
गुरुः = गुरु
देवः = स्वयं प्रकाश रूप
महेश्वरः = महेश्वर (ज्ञानरूपी प्रकाश से अज्ञान को जड से नष्ट करने वाले) हैं।
गुरुः = गुरु
साक्षात् = प्रत्यक्ष दीखने वाले
परम् = निर्विशेष
ब्रह्म = परमात्मा हैं
तस्मै = एसे उन सर्वोत्कृष्ट
श्रीगुरवे = श्री गुरुदेव को
नमः = नमस्कार है ।

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥९॥

श्रुतिस्मृति-पुराणानाम् = वेद स्मृति पुराणादि शास्त्रों के
आलयम् = आश्रय
करुणालयम् = करुणासागर
लोकशङ्करम् = समस्त प्राणीवर्ग का कल्याण करनेवाले
शङ्करम् = आचार्य श्रीशङ्कर
भगवत्पादम् = भगवत्पाद को
नमामि = मैं नमस्कार करता हूँ ।

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥१०॥

सूत्रभाष्य-कृतौ = ब्रह्मसूत्र और उसके भाष्य को बनाने वाले
भगवन्तौ = समस्त ज्ञान धर्म ऐश्वर्य वैराग्यादि वाले

केशवम् = भगवान् विष्णु के अवतार
बादरायणम् = वेदव्यास को (और)
शङ्करम् = भगवान् शङ्कर के अवतार
शङ्कराचार्यम् = आचार्य शङ्कर भगवान् को
पुनः पुनः = बारम्बार
वन्दे = मैं नमस्कार करता हूँ।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥११॥

ईश्वरः = जिस तत्त्व का उपदेश दिया जाता है
गुरुः = उपदेश देने वाला
आत्मा = उपदेश लेने वाला,
इति = इन (तीनों के)
मूर्तिभेद-विभागिने = अलगपने को मिटाने वाले
व्योमवत् = आकाश के समान
व्याप्तदेहाय = व्याप्त शरीरवाले
दक्षिणामूर्तये = श्री दक्षिणामूर्ति शरीरधारी भगवान् सदाशिव को
नमः = नमस्कार है।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः..................
नाना सुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिम या दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥

श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्

ॐ गजाननं भूतगणाधिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥

कपित्थ-जम्बू = कैथ और जामुन
फल-चारु के सुन्दर फलों को
भक्षणम् खाने वाले
गजाननम् = हाथी के मुख वाले
भूतगणाधि- = भूतगणों से
सेवितम् पूजित
उमासुतम् = पार्वती के पुत्र (गणेशजी) को

नमामि = मैं नमस्कार करता हूँ
शोक-विनाश- = संसार रूपी शोक
कारकम् को नष्ट करने वाले
विघ्नेश्वरपाद- = गणेशजी के चरण
पङ्कजम् कमलों को
नमामि = मैं नमस्कार करता हूँ

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः ॥१॥

महिम्नः पारं ते परम् अविदुषः यदि असदृशी
स्तुतिः ब्रह्मादीनाम् अपि तद् अवसन्नाः त्वयि गिरः ।
अथ अवाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
मम अपि एषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

हर ! = हे पापों को हरने वाले !
ते = आपको
महिम्नः = महिमा
परम् = अन्तिम
पारम् = सीमा को
अविदुषः = नहीं जाननेवाले का
स्तुतिः = स्तवन
यद्द = अगर
असदृशी = जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है
तद् = तो
ब्रह्मादीनाम् = ब्रह्मा, विष्णु इन्द्रादिक का
अपि = भी
गिरः = स्तवन
त्वयि = आपके

अवसन्नाः = अयोग्य ही है। (क्योंकि वे भी आपको पूर्ण रूप से नहीं जानते)
अथ = यदि (ऐसा कहो कि)
सर्वः = सभी लोग
स्वमतिपरिणामावधि = अपनी बुद्धि की पहुँच तक
गृणन् = स्तवन करने पर
अवाच्यः = दोष देने योग्य नहीं है
मम अपि = (तब तो) मेरा भी
स्तोत्रे = स्तवन करने का
एषः = यह
परिकरः = प्रयत्न
निरपवादः = दोष रहित ही है।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
सः कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

अतीतः पन्थानम् तव च महिमा वाङ्मनसयोः
अतद्व्यावृत्त्या यं चकितम् अभिधत्ते श्रुतिः अपि।
सः कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे तु अर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥

तव = आपकी
महिमा = बड़ाई
वाङ्मनसयोः = वाणी और मन की
पन्थानम् = पहुँच से
अतीतः = दूर है
च = ही (क्योंकि)
यं = जिसका (वर्णन)
श्रुतिः = वेद
अपि = भी
चकितम् = डरकर
अतद्व्यावृत्त्या[1] = निषेध मुख से
अभिधत्ते = करता है
सः = वह
कस्य = किसकी
स्तोतव्यः = स्तुति का विषय हो सकता है (क्योंकि)
कतिविधगुणः = (उसके सगुण रूप में कौन से गुण नहीं हैं) (अर्थात्-अनन्त गुण हैं)
कस्य = (उसका निर्गुण रूप) किसी का किस वाणी या मनका
विषयः = विषय हो सकता है (फिर भी)
अर्वाचीने = भक्तोंपर कृपा करके धारण करने वाले
पदे = पञ्चमुखादि रूपों में
तु = तो
कस्य = किस प्राणी का
मनः = मन
न पतति = नहीं लगता है
वचः = (और) वाणी
न = नहीं
(पतति) = (प्रवेश करती।)

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् ! किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

---

१. वेद भी गलती न हो जाय इस भय से सगुणरूप का वर्णन तो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—सभी कुछ ब्रह्म है—इस प्रकार और निर्गुणरूप का वर्णन "नेति नेति" वह यह सब नहीं हैं—इस प्रकार करता है ।

मधुस्फीता वाचः परमम् अमृतम् निर्मितवतः
तव ब्रह्मन् ! किं वाक् अपि सुरगुरोः विस्मयपदम् ।
मम तु एताम् वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामि इति अर्थे अस्मिन् पुरमथन ! बुद्धिः व्यवसिता ॥

ब्रह्मन्	= हे व्यापक स्वरूप	तु	= तथापि
मधुस्फीता	= अत्यन्त मीठे शब्दों में सनी हुई	पुरमथन !	= हे त्रिपुरासुर को मारने वाले
परमम्	= सर्वोत्तम (और)		
अमृतम्	= मोक्ष द्वारा देने-वाली,	भवतः	= आपके
		गुणकथन-पुण्येन	= गुणों का वर्णन करने के पुण्य से
वाचः	= वेदवाणी की		
निर्मितवतः	= रचना करने वाले	एतां	= इस (अपनी)
तव	= आपको	वाणीं	= वाणी को
किं	= क्या	पुनामि	= पवित्र करता हूँ
सुरगुरोः	= ब्रह्मा जी की	इति	= इसलिए
वाक्	= वाणी	अस्मिन्	= इस स्तुतिरूप
अपि	= भी	अर्थे	= कार्य में
विस्मयपदम्	= आश्चर्य करा सकती है ? (अर्थात् नहीं करा सकती,)	मम	= मेरी
		बुद्धिः	= बुद्धि
		व्यवसिता	= लगी है ।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद ! रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

तव ऐश्वर्यम् यत् तत् जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तम् तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानाम् अस्मिन् वरद ! रमणीयाम् अरमणीम्
विहन्तुम् व्याक्रोशीं विदधते इह एके जडधियः ॥

वरद ! = हे समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले !

जगदुदयरक्षा-प्रलयकृत् = आकाशादि सभी जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाला

त्रयीवस्तु = वेदों द्वारा प्रतिपादित

गुणभिन्नासु = सत्त्व, रज और तमोगुण के भेद से

तिसृषु = तीन (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र)

तनुषु = मूर्तियों में

व्यस्तम् = बँटा हुआ (प्रकट किया हुआ)

यत् = जो

तव = आपका

ऐश्वर्यम् = ऐश्वर्य,

तत् = उसका

विहन्तुम् = खण्डन करने के लिए

इह = इस संसार में

जडधियः = मूढ़ बुद्धिवाले (जड़ पदार्थों पर ही सोचने वाले)

एके = कुछ लोग

अरमणीम् = नुकसान पहुँचाने वाले,

अस्मिन् = (परन्तु) इस ब्रह्माण्ड भर में

अभव्यानाम्[1] = जिनका कल्याण नहीं है

रमणीयाम् = उनको प्रिय लगने वाले

व्याक्रोशीं = आक्षेप पूर्ण मिथ्या दोष

विदधते = लगाते हैं।

---

१. भगवान् पर दोष लगानेवालों का कहीं भी उद्धार नहीं हो सकता।

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन् मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायः त्रिभुवनम्
किमाधारः धाता सृजति किमुपादानः इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अनवसरदुःस्थः हतधियः
कुतर्कः अयम् कांश्चित् मुखरयति मोहाय जगतः ॥

त्वयि = आपके
अतर्क्यैश्वर्यें = किसी भी तर्क से जाना नहीं जा सके ऐसे ऐश्वर्यके बारेमें
सः = वह (ईश्वर)
धाता = जगत् का निर्माण करने वाला
किमाधारः = किस पर बैठकर,
किंकायः = किस शरीर से,
किमीहः = किस प्रयत्न द्वारा
किमुपायः = कौन से औजारों से,
किमुपादानः = किस चीज से
त्रिभुवनम् = तीनों लोकों को
सृजति = बनाता है,
च = और
इति = इसी प्रकार के दूसरे
कुतर्कः = (जो ठीक दीखें लेकिन विचार करने पर गलत निकलें ऐसे) कुतर्क
जगतः = संसार को
मोहाय = भ्रम में डालने के लिए
हतधियः = जिनकी बुद्धि मारी गयी है
कांश्चित् = ऐसे कुछ लोगों को
मुखरयति = बकवादी बनाते हैं
खलु = लेकिन
अयम् = यह (कुतर्क)
अनवसर[1]- दुःस्थः = अवकाश रहित और असिद्ध है ।

---

१. साधारण कर्त्ताओं द्वारा ईश्वर विषयक अनुमान किया जाता है, परन्तु वह ईश्वर अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है, अतः यह अनुमान से सिद्ध नहीं होता है ।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनोशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर ! संशेरत इमे ॥६॥

अजन्मानः लोकाः किम् अवयवन्तः अपि जगताम्
अधिष्ठातारम् किं भवविधिः अनादृत्य भवति।
अनीशः वा कुर्यात् भुवनजनने कः परिकरः
यतः मन्दाः त्वां प्रति अमरवर संशेरते इमे ॥

अमरवर ! = हे देव श्रेष्ठ महादेव !
अवयववन्तः = जो टूट सकें ऐसे अङ्ग वाले होने पर
अपि = भी
लोकाः = पृथ्वी स्वर्गादि लोक
किं = क्या
अजन्मानः[1] = उत्पत्ति रहित हो सकते हैं ? (अर्थात् नहीं)
जगताम् = (जब वे लोक उत्पत्ति वाले हैं ता) पृथिव्यादि लोकों की
भवविधिः = उत्पत्ति

अधिष्ठातारम् = कर्त्ता के
अनाहत्य = विना
किं = क्या
भवति = हो सकती है ?
वा = यदि (इस प्रकार संसार का कर्त्ता अवश्य होने पर)
अनीशः = सर्वसमर्थ ईश्वर से भिन्न (कोई)
भुवनजनने = संसार को उत्पन्न
कुर्यात् = करे,
कः = (तो संसार को बनाने क लिए) कौन सी

---

१. संसार में जो-जो खण्डित हो सकते हैं वे सब उत्पत्ति होनेवाले पाये जाते हैं। जैसे घड़े या कपड़े के टुकड़े हो सकते हैं तो वे उत्पत्तिवाले भी होते हैं। सभी लोक इसी प्रकार टुकड़ेवाले हैं अतः उत्पत्तिवाले भी हैं।

परिकरः[1]	= सामग्री (काम में लावेगा ?)	इमे	=	वे
		मन्दाः	=	मूर्ख लोग ही हैं जो
यतः	= इस प्रकार प्रमाणों से ईश्वर के सिद्ध होने के कारण	त्वां	=	आपके
		प्रति	=	बारे में
		संशेरते	=	सन्देह करते हैं

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

त्रयी सांख्यम् योगः पशुपतिमतम् वैष्णवम् इति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परम् इदम् अदः पथ्यम् इति च ।
रुचीनाम् वैचित्र्यात् ऋजु-कुटिल-नाना-पथ-जुषाम्
नृणाम् एकः गम्यः त्वम् असि पयसाम् अर्णवः इव ॥

त्रयी	= वैदिक सनातन धर्म,	वैष्णवम्	=	वैष्णवमार्ग
सांख्यम्	= कपिलमुनि प्रणीत सांख्य मार्ग,	इति	=	इतने
		प्रभिन्ने	=	अलग अलग
योगः	= पातञ्जल मार्ग	प्रस्थाने	=	रास्तों में से
पशुपतिमतम्	= शैवमार्ग,	इदम्	=	यह मार्ग

---

१. ईश्वर को छोड़कर सभी लोग किसी सामग्री से ही चीज बनाते हैं। जैसे कुम्हार मिट्टी रूप सामग्री से घड़ा बनाता है। अतः इस संसार का ईश्वर से भिन्न यदि बनानेवाला मानो तो किस सामग्री से उसने बनाया ? वह सामग्री कहाँ थी ? इत्यादि पूर्वश्लोक में कही हुई शंकाएँ उठ खड़ी होंगी। इसलिए ईश्वर को ही संसार का बनानेवाला मानना होगा।

परम्	= सर्वोत्तम है		नृणाम्	= मनुष्यों को,
च	= या		पयसाम्	= नदियों के लिए
अदः	= वह मार्ग		अर्णवः	= समुद्र की
पथ्यम्	= हितकारी है		इव	= तरह,
इति	= ऐसा		त्वम्	= आप ही
रुचीनाम्	= पसन्दताओं के		एकः[1]	= एकमात्र
वैचित्र्यात्	= भिन्न होने से (है)।		गम्यः	= प्राप्त करने के योग्य
ऋजु-कुटिल-नाना-पथ-जुषाम्	= इन सीधे या घुमावदार रास्तों से चलने वाले		असि	= हैं।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद! तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रूप्रणिहितं
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

महोक्षः खट्वाङ्गम् परशुः अजिनम् भस्म फणिनः
कपालं च इति इयत् तव वरद ! तन्त्रोपकरणम्।
सुराः ताम् ताम् ऋद्धिम् विदधति भवद्भ्रूप्रणिहितम्
न हि स्वात्मारामम् विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

वरद !	= हे श्रेष्ठ मोक्ष को देने वाले !		महोक्षः	= एक बूढा बैल,
तव	= आप के		खट्वाङ्गम्	= खाट का एक पाया,
तन्त्रोपकरणम्	= घर की सम्पत्ति		परशुः	= एक फरसा,
			अजिनम्	= एक गज चर्म

---

१. इनमें सनातन वैदिक धर्म सीधा रास्ता है व दूसरे क्रमशः कुटिल मार्ग हैं।

भस्म = राख,
फणिनः = कुछ काले जहरीले साँप
च = और
कपालम् = एक नरमुण्ड
इति = बस
इयत् = ये (सात ही हैं ।)
तु = फिर भी
सुराः = अन्य सारे देवता
भवद्भ्रू-प्रणिहितम् = आपके कृपा कटाक्ष से ही हुई
ताम् = उन
ऋद्धिम् = सम्पत्तियों को (सुदर्शनचक्र, ऐरावत, कल्प वृक्षादि)
विदधति = धारण करते है (अर्थात् भोगते है),
हि = क्योंकि
विषय-मृगतृष्णा = विषयसुखों की मृगतृष्णा का जल
स्वात्मारामम् = चिदानन्दघन स्वरूप में रहने वाले को
न भ्रमयति[1] = भ्रम में नहीं डाल सकता ।

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन ! तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥

ध्रुवम् कश्चित् सर्वम् सकलम् अपरः तु अध्रुवम् इदम्
परः ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्ते अपि एतस्मिन् पुरमथन ! तैः विस्मितः इव
स्तुवन् जिह्रेमि त्वाम् न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥

१. भगवान् शंकर की यही विशेषता है कि बाहर से सम्पत्तिहीन होते हुए भी सर्व सम्पत्तियों के दाता है, अतः भोगमोक्षार्थी दोनों ही को उनकी उपासना कर्त्तव्य है ।

पुरमथन ! = हे स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह को नष्ट करके आत्म स्वरूप में स्थित करने वाले !

कश्चित् = कोई (सांख्य, सत्कार्यवादी)

सर्वम् = स्थूल सूक्ष्म सारे संसार को

ध्रुवम् = उत्पत्ति नाश से रहित

गदति = कहता है।

तु = तो

अपरः = दूसरा (बौद्ध-नास्तिकादि असत्कार्यवादी)

इदम् = इन

सकलम् = जड चेतन समेत सारे पदार्थों को

अध्रुवम् = नाश वाला (क्षणिक)

गदति = कहता है।

अपि = और

परः = इन दोनों से अलग मतवाला (नैयायिक आरम्भवादी)

एतस्मिन् = इस

समस्ते = सारे

जगति = विश्व में

ध्रौव्याध्रौव्ये = विनाशी और अविनाशी

व्यस्तविषये = पदार्थ बैठे हुए हैं

गदति = ऐसा कहता है

ननु = तो

मुखरता = उन वादियों की वाचालता

धृष्टा = निर्लज्ज है।

तैः = उन वादियों की उक्तियों से

विस्मितः = अचंभित

इव = सा (होकर भी)

त्वाम् = आप की

स्तुवन् = स्तुति करने में

खलु = अवश्य ही (विवर्तवादी वैदिक मतका अनुसरण करने के कारण)

न जिह्नेमि = मैं लज्जित नहीं होता।

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश ! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

तव ऐश्वर्यम् यत्नात् यत् उपरि विरिञ्चिः हरिः अधः
परिच्छेत्तुं यातौ अनलम् अनलस्कन्धवपुषः ।
ततः भक्ति-श्रद्धा-भर-गुरु-गृणद्भ्याम् गिरिश ! यत्
स्वयम् तस्थे ताभ्याम् तव किम् अनुवृत्तिः न फलति ॥

गिरिश !	= हे हिमालय पर्वत पर समाधिमग्न	तव	= आपके
तव	= आपकी	ऐश्वर्यम्	= मूर्तरूप
अनुवृत्तिः	= (कायिक, वाचिक मानसिक) सेवा	परिच्छेत्तुम्	= सीमा का पता लगाने के लिए
किम्	= कौन सा	यत्नात्	= बड़े ही प्रयत्न के साथ
न फलति	= फल नहीं देती ? (मोक्ष पर्यन्त सारे फल देती ही है ।)	उपरि	= ऊपर की तरफ
		विरिञ्चिः	= भगवान् ब्रह्मा
यत्	= क्योंकि	अधः	= (और) नीचे की तरफ
यत्	= जब		
अनलस्कन्ध-वपुषः[1]	= तेजोमयलिङ्गाकार शरीर वाले	हरिः	= भगवान् विष्णु
		यातौ	= गये

१. एक बार भगवान् ब्रह्मा और भगवान् विष्णु में अपनी-अपनी महत्ता के बारे में विवाद हुआ । विवाद हटाने के लिए भगवान् शंकर उनके सामने स्थूल तेजोमय लिङ्गाकार में प्रकट हो गये ।

अनलम् = (लेकिन दिव्य हजारों वर्षों तक के प्रयत्न के बाद-भी) पार नहीं पाया,

ततः = तब (अन्तमें थक कर)

भक्ति-श्रद्धा-भर-गुरु-गृणद्भ्याम् = शरीर से सेवा रूप भक्ति और मन से सेवा रूप श्रद्धा से पूर्णतया युक्त हो कर वाणी से स्तुति करने पर

ताभ्याम् = उन दोनों के सामने

स्वयम् = आप अपने आप

तस्थे = प्रकट हो गये ।

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

अयत्नात् आपाद्य त्रिभुवनम् अवैरव्यतिकरम्
दशास्यः यत् बाहून् अभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः-पद्म-श्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुह-बलेः
स्थिरायाः त्वद्भक्तेः त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितम् इदम् ॥

त्रिपुरहर ! = हे जीव जगत् और ईश्वर का भेद मिटाने वाले !

शिरः-पद्म[1]-श्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुह-बलेः = अपने ही मस्तक रूपी कमलों की पंक्ति को आपके चरण कमलों में भेट रूपसे चढ़ा दिया,

स्थिरायाः = ऐसी अविचल

त्वद्भक्तेः = आपकी भक्ति का (ही)

इदम् = यह

विस्फूर्जितम् = प्रताप (है)

यत् = कि

दशास्यः = दशमुख रावण ने

त्रिभुवनम् = त्रिलोक को

---

१. रावण ने अपने नव सिर महादेवजी को कमल की जगह पर चढ़ाये थे ।

अयत्नात्	=	बिना प्रयत्न के ही	रणकण्डू-	=	युद्ध के लिए खुज-
अवैरव्यक्ति-	=	वैर रहित	परवशान्		जाते हुए
करम्		(निष्कंटक)	बाहून्	=	(अपने बीस) हाथों को
आपाद्य	=	बनाकर (भी)	अभृत	=	धारण किया ।

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

अमुष्य त्वत् सेवासमधिगतसारम् भुजवनम्
बलात् कैलासे अपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पाताले अपि अलस-चलिताङ्गुष्ठ-शिरसि
प्रतिष्ठा त्वयि आसीद् ध्रुवम् उपचितः मुह्यति खलः ॥

कैलासे	=	कैलास में	बलात्	=	अत्यन्त बहादुरी के साथ
त्वदधिवसतौ	=	आपके रहने पर			
अपि	=	भी,	विक्रमयतः	=	आजमाने वाले
त्वत्सेवा-	=	आपकी सेवा से ही	अमुष्य	=	उस (रावण) को,
समाधिगत-		पाये हुए बल से	त्वयि	=	आपके
सारम्		बलवान्	अलस-	=	अँगूठे का ऊपरी
			चलिताङ्-		भाग अनायास ही
भुजवनम्	=	अपने (बीस) हाथों रूपी वनको	गुष्ठ शिरसि		धीरे से हिल जाने के कारण

१. रावण की ललकार से ही सब लोगों ने हार मान ली अतः उसकी युद्ध की इच्छा पूर्ण नहीं हुई । अतः उसके हाथ युद्ध के लिए खुजलाते ही रहते थे ।

पाताले = पाताल में
अपि = भी
प्रतिष्ठा = टिकाव (स्थान)
अलभ्या = नहीं मिला
आसीत् = था ।

खलः = कृतघ्न पुरुष
उपचितः = समृद्ध होने पर
ध्रुवम् = उपकारी को
मुह्यति = अवश्य ही भूल जाता है ।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१२॥

यत् ऋद्धिम् सुत्राम्णः वरद ! परमोच्चैः अपि सतीम्
अधः चक्रे बाणः परिजन-विधेयः त्रिभुवनः ।
न तत् चित्रम् तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयोः
न कस्य अपि उन्नत्यै भवति शिरसः त्वयि अवनतिः ॥

वरद ! = हे समस्त भोगों को विना भोगे ही अपने भक्तों को देनेवाले !
परिजन-विधेय-त्रिभुवनः = त्रिलोकी को दास की तरह अधीन रखने वाले
वाणः = वाणासुर ने
परमोच्चैः = सबसे बढ़े चढ़े
सतीम् = हुए
सुत्राम्णः = इन्द्र के
ऋद्धिम् = ऐश्वर्य को

अपि = भी
यत् = जो (अपने वैभवसे)
अधः = नीचा
चक्रे = कर दिया
तत् = वह
त्वच्चरणयोः = आपके चरणों की
वरिवसितरि = नमस्कारादि सेवा करने वाले
तस्मिन् = उस वाणासुर में
चित्रम् = कोई आश्चर्य (की बात)

न = नहीं है।
त्वयि = (क्योंकि) आपके चरणों में
शिरसः = मस्तक का
अवनतिः[1] = झुकना (नमस्कार करना)

कस्य = किसकी कौनसी
उन्नत्यै = उन्नति के लिए
न = नहीं
भवति = होता है ? अर्थात् सबकी ही सम्पूर्ण उन्नति कर देता है।

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥

अकाण्ड–ब्रह्माण्ड–क्षय–चकित–देवासुर–कृपा–
विधेयस्य आसीत् यः त्रिनयन विषम् संहृतवतः ।
सः कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियम् अहो
विकारः अपि श्लाघ्यः भुवन-भय-भङ्ग-व्यसनिनः ॥

त्रिनयन ! = हे सूर्यचन्द्र और अग्निरूपी आँख वाले !
अकाण्डे[2]- = असमय में ही

ब्रह्माण्डक्षय-चकित-देवासुर-कृपा-विधेयस्य कालकूट जहर के प्रभाव से ब्रह्माण्ड के महा प्रलयकी सम्भावनासे आश्चर्य

---

१. भगवान् के सामने अपने को नीचा करने से (प्रणाम करने से) संसार में सबसे ऊँचा हो जाता है यही आश्चर्य है।

२. अमृत मन्थन के समय जब कालकूट नाम का प्रलयंकर जहर निकला तो सभी डर गये। अन्त में विष्णु भगवान् के नेतृत्व में सभी ने महादेवजी की शरण ली। उन्होंने उसे सहज ही पीकर गले में धारण कर लिया। इसी से आप 'नीलकण्ठ' हो गये।

	चकित देवता और राक्षसों पर दया के वशीभूत होकर	श्रियम्	=	(आपके गले को) सुन्दर
विषं	= उस कालकूट जहर को	न कुरुते	=	नहीं बनाता है
		न	=	ऐसा नहीं (अर्थात् बनाता ही है)।
		अहो	=	आश्चर्य है कि
संहृतवतः	= (आपने) पी लिया	भुवनभय-भङ्ग-व्यसनिनः	=	समस्त संसारके भय को नाश करने के स्वभाव वाले का
तव	= आपके	विकारः	=	असौन्दर्य
कण्ठे	= गले में	अति	=	भी
यः	= (उससे) जो	श्लाघ्यः	=	प्रशंसनीय हो जाता है।
कल्माषः	= काला दाग			
आसीत्	= हो गया			
सः	= वह दाग			

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखा।
स पश्यन्नीश ! त्वामितरसुरसाधारणभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

असिद्धार्थाः न एव क्वचित् अपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनः यस्य विशिखाः।
सः पश्यन् ईश ! त्वाम् इतर-सुर-साधारणम् अभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥

ईश !	= हे ब्रह्माण्ड का शासन करने वाले !	नित्यं	= हमेशा
यस्य	= जिस	जयिनः	= जीतने वाले (कामदेव के)

विशिखाः	=	वाण	पश्यन्	=	समझने के कारण
सदेवासुरनरे	=	देवता, राक्षस, मनुष्य युक्त	स्मर्तव्यात्मा[1]	=	(उसका शरीर) केवल स्मरण का विषय
जगति	=	संसार में			
क्वचिद्	=	कभी किसी पर			
अपि	=	भी	अभूत्	=	हो गया (अर्थात् वह मर गया
असिद्धार्थाः	=	अपने कार्य किये बिना	हि	=	और यह उचित भी है) क्योंकि
निवर्तन्ते	=	वापस लौटते			
एव	=	ही	वशिषु	=	शरीर इन्द्रिय मन को वश में करने वालों का
न	=	नहीं			
सः	=	(ऐस प्रतापी) वह			
स्मरः	=	कामदेव			
त्वां	=	आपको	परिभवः	=	अपमान
इतरसुर-साधारणम्	=	अन्य देवताओं के समान	पथ्यः	=	लाभदायक
			न	=	नहीं होता

---

१. कामदेव सभी को पीड़ित करने में समर्थ है, अतः उसको बड़ा घमण्ड था। जब तारकासुर किसी से भी नहीं मरा तो देवताओं ने सोचा कि महादेवजी के पुत्र द्वारा ही इसका वध हो सकता है। लेकिन भगवान् शङ्कर उस समय समाधिस्थ थे, अतः देवताओं ने कामदेव को उन्हें जगाने के लिए भेजा। अपनी सारी शक्तियों के साथ उसने महादेवजी पर आक्रमण किया। समाधि में विक्षेप हुआ। भगवान् शंकर के नेत्र खुल गये। चारों तरफ नजर डालने पर पता लगा कि यह कामदेव की उद्दण्डता थी। कामदेव गर्व में भूल गया था कि उन महादेव की कृपा से ही वह जगद्विजयी बना था। तीसरा नेत्र खुला और क्षण भर में उस जगद्विजयी की जगह पर केवल भस्म की ढेरी उस कामदेव की स्मृति में रह गयी।

महीं पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदम्
पदम् विष्णोः भ्राम्यद्-भुज-परिघ-रुग्ण-ग्रहगणम् ।
मुहुः द्यौः दौस्थ्यम् याति अनिभृत-जटा-ताडित-तटा
जगद्रक्षायै त्वम् नटसि ननु वामा एव विभुता ॥

(नटराज !)	=	(हे नटराज शंकर ! जव)	व्रजति	=	प्राप्त हो जाती है (अर्थात् मैं बचूंगी या नष्ट हो जाऊँगी)
त्वं	=	आप	विष्णोः	=	(तथा) भगवान् विष्णु का
जगद्रक्षायै	=	संसार की रक्षा के लिए (कालबल-नामक राक्षस को मोहित करने के लिये)	पदम्	=	लोक वैकुण्ठ) और सारे ग्रह भी
नटसि	=	ताण्डव नृत्य करते हैं (तव)	भ्राम्यद्भुज-परिघरुग्ण-ग्रहगणम्	=	अत्यन्त मजबूत और लम्बी शूल सदृश भुजाओं के घुमाने से घबरा जाते हैं ।
मही	=	पृथिवी	द्यौः	=	आकाश
पादाघाताद्	=	ताल देने के लिए की हुई पैर की चोट से	अनिभृतजटा-ताडिततटा	=	खुली हुई जटा का भाग एक देश में लग जाने के कारण
सहसा	=	अकस्मात्			
संशयपदं	=	अपने बचने के बारे में शंका को	मुहुः	=	बार-बार

दौस्थ्यम्	=	अस्थिर
याति	=	हो रहा हैं।
ननु	=	अहो
विभुता	=	ऐश्वर्य
वामा	=	विपरीत
एव	=	ही फल देता है। (अर्थात् रक्षा के कार्य में भी लोगों को कुछ कष्ट हो ही जाता है। जैसे किसी राजा के प्रजा को बचाने के लिए युद्ध करने पर भी प्रजा को कुछ कष्ट हो ही जाता हैं।)

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि—
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहः वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतम् इति
अनेन एव उन्नेयम् धृतमहिम दिव्यम् तव वपुः ॥

वियद्व्यापी	=	आकाश भर में व्याप्त
तारागण-गुणितफेनोद्गमरुचिः	=	ताराओं के प्रति-विम्ब से बुदबुदों की शोभा बढ़ गयी है जिस
वारां	=	जल के
प्रवाहः	=	प्रवाह की
ते	=	(वह गंगा) आप के
शिरसि	=	शिर में
पृषतलघुदृष्टः[1]	=	बिन्दु से भी छोटी प्रतीत होती थी।

१. गंगावतरण के समय शङ्कर भगवान् ने गङ्गा को अपनी जटा में रख लिया था और वहाँ वह बिन्दु के समान दीखती थी। उसी गंगा ने अगस्त्य ऋषि के पी लेने के कारण खाली हुए समुद्र को फिर से भर दिया।

तेन	= उसी गंगाजलने	दिव्यम्	= सर्व देवताओं के शासक
जगत्	= संसार को	वपुः	= शरीर ने
जलधिवलयम्	= जलसमुद्र से घेरकर	धृतमहिम	= (कैसी) विशाल महिमा को धारण किया है
द्वीपाकारम्	= दीप की शकल का	इति	= इसका
कृतम्	= बना दिया	उन्नेयम्	= पता लगाया जा सकता है।
अनेन	= इससे		
एव[1]	= ही		
तव	= आपके		

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिः अगेन्द्रः धनुः अथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शरः इति।
दिधक्षोः ते कः अयम् त्रिपुरतृणां आडम्बरविधिः
विधेयैः क्रीडन्त्यः न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥

क्षोणी	= पृथ्वी को	चन्द्रार्कौ	= सूर्य और चन्द्रमा को
रथः	= रथ	रथाङ्गे	= रथ के पहिये,
शतधृतिः	= ब्रह्म को	अथो	= और
यन्ता	= सारथी,	रथचरणपाणिः	= चक्रपाणि भगवान् विष्णु को
अगेन्द्रः	= सुमेरु पर्वत को		
धनुः	= धनुष,		

१. यह एक ही प्रमाण आपकी महानता के लिए पर्याप्त है।

शरः	= बाण	विधिः	= पूर्ण तैयारी
इति	= इस प्रकार	खलु	= ठीक ही है
त्रिपुरतृणं	= त्रिपुरासुररूपी तिनके को	विधेयैः	= स्वतन्त्रता से
दिधक्षोः	= जलाने की इच्छा वाले	क्रीडन्त्यः[1]	= खेलते हुए
ते	= आपकी	प्रभुधियः	= सर्वेश्वर की संकल्परूपी बुद्धि
अयम्	= यह	परतन्त्रताः	= किसी अन्यके उचितानुचित विचारकी अपेक्ष
कः	= क्या		
आडम्बर	= अद्भुत आडम्बर	न	= नहीं रखती

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन् नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥१९॥

हरिः ते साहस्रम् कमलबलिम् आधाय पदयोः
यत् एकोने तस्मिन् निजम् उदहरन् नेत्रकमलम् ।
गतः भक्त्युद्रेकः परिणतिम् असौ चक्रवपुषा
त्रयाणाम् रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥

त्रिपुरहर !	= हे त्रिपुरासुर नाशक !	हरिः	= भगवान् विष्णु ने
		ते	= आपके

---

१. लौकिक पुरुष अनायास होने वाले कार्य के लिए बड़ी तैयारी नहीं करते । महादेवजी कटाक्ष से भी त्रिपुरासुरको नष्ट करने में समर्थ होने पर भी इतनी बड़ी तैयारी केवल खेल के लिए करते हैं । यही उनका ऐश्वर्य है ।

पदयोः = चरणों में
साहस्रम् = एक हजार
कमलबलिम् = कमलों की भेंट
आधाय = चढ़ाने का संकल्प करके
तस्मिन् = उन (कमलों) में से
एकोने = एक कम हो जाने पर
यत् = जो
निजम् = अपने
नेत्रकमलम् = आँखरूपी कमल को
उदहरन् = उखाड़ा,
असौ = वही
भक्त्युद्रेकः = भक्ति का आधिक्य
चक्रवपुषा = सुदर्शनचक्र रूप में
परिणति = बदल
गतः = गया,
त्रयाणाम् = (और भगवान् विष्णु अब) उसी सुदर्शन से तीनों
जगताम् = लोकों की
रक्षायै = रक्षा करने में
जागर्ति = सावधान रहते हैं।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कृतपरिकरः[3] कर्मसु जनः ॥२०॥

---

१. भगवान् विष्णु प्रतिदिन १००० कमलों से शिवजी की पूजा करते हैं। एक बार उनकी भक्ति की परीक्षा करने के लिए शिवजी ने एक कमल को गुप्त कर दिया। पूजा करने बैठने के बाद बिना पूर्ण किये उठने से नियम भङ्ग हो जायगा अतः भगवान् विष्णु ने सोचा कि अपना नेत्र कमल ही क्यों न चढ़ा दें। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर शङ्कर ने उन्हें सुदर्शन चक्र दे दिया।

२. भक्ति तो एक भगवान् विष्णु ने की और रक्षा सारे जगत् की हो गयी, यही महादेव की भक्ति का अचिन्त्य माहात्म्य है।

३. "दृढपरिकरः" पाठ भेद है।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत् त्वम् असि फलयोगे क्रतुमताम्
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनम् ऋते।
अतः त्वाम् सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कृतपरिकरः कर्मसु जनः॥

प्रध्वस्तम्	= समाप्त होते ही नष्ट हुआ	असि	= हैं,
कर्म	= कर्म	अतः	= इसलिए
पुरुषाराधनम्	= चेतन तत्त्व की उपासना के	त्वाम्	= आपको
ऋते	= विना	क्रतुषु	= वैदिक और स्मार्त कर्मों के
क्व	= कहाँ और कब	फलदानप्रति-भुवम्	= फल देने में संलग्न
फलति	= फल देता है?	सम्प्रेक्ष्य	= जानकर
क्रतौ	= (फिर भी) यज्ञ, जप, पूजादि	जनः	= अधिकारी लोग
सुप्ते	= नष्ट हो जाने पर	श्रुतौ	= वेद में
क्रतुमताम्	= यज्ञादि कर्म करने वालों को	श्रद्धां	= अत्यन्त विश्वास
फलयोगे	= फल देने में	बद्ध्वा	= रख कर
त्वम्	= आप	कर्मसु	= वैदिक कर्म में
जाग्रत्	= सावधान	कृतपरिकरः	= उद्यम प्रारम्भ करते हैं।

---

१. प्रत्येक कार्य समाप्त होते ही नष्ट हो जाता है। परन्तु राजा आदि के सेवा रूप कार्य के समाप्त होने के बाद भी राजा उसका भविष्य में फल देता है। इसी प्रकार पूजा जप आदि कार्य तो नष्ट हो जाते हैं, परन्तु भविष्य में उनके फल देने वाले चेतन तत्त्व भगवान् सदाशिव मौजूद हैं। इससे जो सांख्यादिक ईश्वर को नहीं मानते उनका पराभव हो गया क्योंकि जो जड चीज है, वह देश काल के व्यवधान से, फल देने में असमर्थ है।

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता–
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद ! सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः[1] क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

क्रियादक्षः दक्षः क्रतुपतिः अधीशः तनुभृताम्
ऋषीणाम् आर्त्विज्यम् शरणद ! सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रेषः त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनः
ध्रुवम् कर्तुः श्रद्धाविधुरम् अभिचाराय हि मखाः ॥

शरणद ! = हे भूतप्रेतादिको भी शरण देने वाले !
क्रतु-फल-विधान-व्यसनिनः = यज्ञ का स्वर्गादि फल देने वाले
त्वत्तः = आप से,
क्रियादक्षः = (जिस यज्ञ में) यज्ञादि क्रिया में प्रवीण
तनुभृताम् = सभी प्राणियों के
अधीशः = स्वामी
दक्षः[2] = दक्ष प्रजापति स्वयं

क्रतुपतिः = यजमान (थे)
ऋषीणाम् = त्रिकाल दर्शी भृगु आदि महर्षियों की
आर्त्विज्यम् = पुरोहितता (थी)
सुरगणाः = (और) ब्रह्मा विष्णु आदि देवता
सदस्याः = दर्शक (थे)
क्रतुभ्रेषः = ऐसे यज्ञ का नाश हुआ,
हि = क्योंकि

१. "भ्रन्शः" पाठ भेद भी है ।

२. दक्ष प्रजापति का यज्ञ सब विधियों से पूर्ण होने पर भी एक शिव शक्ति से रहित होने के कारण नष्ट हुआ तो साधारण मनुष्यों के कार्य यदि भगवद्भक्ति से रहित होने पर फल न दें तो क्या आश्चर्य है । शिव भक्ति से ही सारे कार्य पूर्णता को प्राप्त होते हैं ।

श्रद्धाविधुरम् = श्रद्धा भक्ति के बिना किये हुए
मखाः = यज्ञ, पूजा, जप आदि
कर्तुः = करने वाले का
अभिचाराय = नाश
ध्रुवम् = अवश्य ही करते हैं।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

प्रजानाथं नाथ ! प्रसभम् अभिकम् स्वाम् दुहितरम्
गतं रोहिदभूताम् रिरमयिषुम् ऋष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेः यातम् दिवम् अपि सपत्राकृतम् अमुम्
त्रसन्तम् ते अद्य अपि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥

नाथ ! = हे दुष्टों का दमन करने वाले !
रोहिदभूताम् = लज्जा से हरिणी बनी हुई
स्वाम् = अपनी ही
दुहितरम् = पुत्री से (सन्ध्या से)
प्रसभम् = जबर्दस्ती
ऋष्यस्य = मृग के
वपुषा = शरीर द्वारा
रिरमयिषुम् = रमण करने की इच्छा
गतम् = से गये हुए
अभिकम् = काम से मर्यादा के उल्लंघन करने वाले
प्रजानाथम् = धर्म प्रवर्तक ब्रह्मा को
दिवम्[1] = आकाश में
यातम् = चले जाने पर

---

१. ब्रह्मा आकाश में जाकर मृगशिरा नक्षत्र बन गया। तो भगवान् शङ्कर का अमोघ बाण भी आर्द्रा नक्षत्र बन गया। मृगशिरा के पीछे आर्द्रा नक्षत्र चलता है। इसी पर यह रूपक है।

अपि	= भी		सपत्राकृतम्	= पर समेत तीर के घुसने की पीड़ा से
ते	= आपके		त्रसन्तम्	= डरते हुए
धनुष्पाणेः	= हाथ के धनुष से छूटा हुआ		अमुम्	= उसको (ब्रह्माको)
			अद्य	= आज
मृगव्याध-रभसः	= हरिणों को मारते वाले व्याधके समान उत्साही वाण		अपि	= भी
			न	= नहीं
			त्यजति	= छोड़ता है।

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन ! पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत ! देहार्धघटना–
दवैति त्वामद्धा बत वरद ! मुग्धा युवतयः ॥२३॥

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषम् अह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन ! पुष्पायुधम् अपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत ! देहार्धघटनात्
अवैति त्वाम् अद्धा बत वरद ! मुग्धाः युवतयः ॥

पुरमथन	= हे प्रलय काल में समस्त संसार का नाश करने वाले !		पुरः	= अपने सामने ही
			तृणवत्	= तिनके की तरह
			आह्नाय	= शीघ्र
स्वलावण्या-शंसाधृतध-नुषम्	= अपने सौन्दर्य पर विश्वास रख कर भगवान् शंकर पर धनुष तानने वाले		प्लुष्टं	= जला हुआ
			दृष्ट्वा	= देखकर
			अपि	= भी
			यदि	= अगर
पुष्पायुधम्	= कामदेव को		देवी	= पार्वती

त्वाम्	=	आपको
देहार्धघटनात्[1]	=	अर्धनारीश्वर रूप धारण करने के कारण
स्त्रैणम्	=	नारी के अधीन
अवैति	=	समझे (तो)
यमनिरत[2] !	=	हे यमादि योग परायण !
वरद !	=	पार्वती को अति दुर्लभ वामाङ्ग में वाले
अद्धा	=	ठीक ही है
वत	=	(क्यों) अहो
युवतयः	=	(नवयुवतियाँ) रमणियाँ
मुग्धाः	=	(स्वभाव से ही) समझहीन अज्ञानी हुआ करती हैं।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर ! पिशाचाः सहचरा–
श्चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकरोटी परिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद ! परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

श्मशानेषु आक्रीडा स्मरहर ! पिशाचाः सहचराः
चिताभस्मालेपः स्त्रक् अपि नृकरोटी परिकरः ।
अमङ्गल्यम् शीलम् तव भवतु नाम एवम् अखिलम्
तथा अपि स्मर्तॄणाम् वरद ! परमम् मंगलम् असि ॥

---

१. "पार्वती ने मेरे लिए बड़ा तप किया है और दुःख उठाया है इसलिए उसे विरह दुःख से उबार लूँ" इस इच्छा से भगवान् शङ्कर ने उनको अपने अत्यन्त दुर्लभ वामाङ्ग में धारण कर लिया । यही अर्धनारीश्वर रूप है ।

२. इस सम्बोधन से भगवान् का सर्वदा जितेन्द्रियत्व बताया गया है । इसलिए वे नारी के अधीन कभी नहीं हो सकते ।

स्मरहर ! = हे कामनाओं के नाशक !
पिशाचाः = भूत प्रेतों की
सहचराः = दोस्तो,
श्मशानेषु = श्मशान में
आक्रीडा = आनन्द से खेलना
चिताभस्मा- लेपः = मुरदे की राख का शरीर में अङ्गराग,
नृकरोटी = मनुष्यों के खोपड़ियों की
स्रक् = माला,
अपि = और भी (गजचर्मादि)
परिकरः = आपकी सम्पत्ति,
एवम् = तथा इस प्रकार का
तव = आपका
अखिलम् = सम्पूर्ण
शीलम् = रहने का ढंग (चरित)
अमङ्गल्यम् = अमाङ्गलिक
भवतु नाम = भले ही प्रतीत हो
तथा = फिर
अपि = भी
वरद ! = हे सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाले !
स्मर्तृणाम् = (आपका) स्मरण करने वालों के तो आप
परमम् = निरतिशय
मंगलम् = मंगलरूप (मोक्ष पद)
असि = हैं।[1]

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

---

१. इससे "मङ्गल कामना वालों को शिव स्मरण नहीं करना चाहिए" ऐसा कहने वालों का पराभव हो गया।

मनः प्रत्यक् चित्ते सविधम् अवधाय आत्तमरुतः
प्रहृष्यद् रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यत् आलोक्य आह्लादम् ह्रदे इव निमज्य अमृतमये
दधति अन्तः तत्वम् किम् अपि यमिनः तत् किल भवान् ॥

यमिनः = शमादि साधन सम्पन्न परमहंस संन्यासी
चित्ते = हृदय के दहराकाश में
प्रत्यक् = (बहिर्विषयों से हटे हुए) अन्तर्मुख
मनः = मन को
अवधाय = वृत्ति रहितकर के,
सविधम् = श्रुति स्मृति में बताई हुई रीति से
आत्तमरुतः = प्राणों का अवरोध करके
प्रहृष्यद् = प्रसन्नता से
रोमाणः = रोमाञ्चित (और)
प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः = आनन्द से जल पूर्ण नेत्रों से युक्त होकर
यत् = जिस
किम् = किसी एक अनिर्वचनीय

अपि = ही
तत्त्वम् = तत्त्व सच्चिदानन्द का
आलोक्य = वेदान्त वाक्यों द्वारा अखण्डाकार वृत्ति से साक्षात्कार करके
अमृतमये = अमृत से भरे
ह्रदे = तालाब में
निमज्य = मग्न हुए
इव = समान
अन्तः = अन्दर ही अन्दर बाह्य सुख से (विलक्षण)
आह्लादम् = निरतिशय सुख को
दधति = धारण करते हैं
तत् = वह (निरशितय-सुख)
किल = श्रुतियों में प्रसिद्ध
भवान् = आप ही हैं।[1]

---

१. इस श्लोक में जीव के रूप का निरूपण और स्वरूप साक्षात्कार की साधना को बताया ।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह–
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

त्वम् अर्कः त्वम् सोमः त्वम् असि पवनः त्वम् हुतवहः
त्वम् आपः त्वम् व्योम त्वम् उ धरणिः आत्मा त्वं इति च ।
परिच्छिन्नाम् एवम् त्वयि परिणताः बिभ्रतु गिरम्
न विद्मः तत् तत्त्वम् वयम् इह तु यत् त्वम् न भवसि ॥

त्वम्	= आप (ही)	धरणिः	= धरती (हैं)
अर्कः	= सूर्य (हैं)	च	= और
त्वम्	= आप (ही)	त्वम्	= आप
सोमः	= चन्द्रमा (हैं)	उ	= ही
त्वम्	= आप (ही)	आत्मा	= आतमा
पवनः	= वायु (हैं)	असि	= हैं,
त्वम्	= आप (ही)	इति	= बस (इतना ही)
हुतवहः	= अग्नि (हैं)	एवम्	= (आप का रूप इस प्रकार है)
त्वम्	= आप (ही)	परिणताः[1]	= पण्डित लोग
आपः	= जल (हैं)	त्वयि	= आपके बारे में
त्वम्	= आप (ही)	परिच्छिन्नाम्	= संकुचित
व्योम	= आकाश (हैं)	गिरम्	= वाणी
त्वम्	= आप (ही)		

१. यहाँ भगवान् को सीमित करने वालों का उपहास करने के लिए उन्हें पण्डित कहा है । इस श्लोक में ईश्वर के रूप का निरूपण किया गया है ।

विभ्रतु	= प्रकाशित करते हैं।	न	= नहीं
वयम्	= हम	भवसि	= हों,
तु	= तो	तत्	= उस
इह	= इस संसार में,	तत्त्वम्	= वस्तु को (ही)
यत्	= जो	न	= नहीं
त्वम्	= आप	विद्मः	= जानते हैं

त्रयी तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा–
नकाराद्यैवर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद ! गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

त्रयीम् तिस्रः वृत्तिः त्रिभुवनम् अथो त्रीन् अपि सुरान्
अकाराद्यैः वर्णैः त्रिभिः अभिदधत् तीर्णविकृति ।
तुरीयम् ते धाम ध्वनिभिः अवरुन्धानम् अणुभिः
समस्तम् व्यस्तम् त्वाम् शरणद ! गृणाति ओम् इति पदम् ॥

शरणद[1] !	= हे भयभीतोंको भय-रहित करनेवाले !	त्रिभिः	= तीन
		वर्णैः	= अक्षरों में
अकाराद्यैः	= अकार, उकार और मकार भेद से	व्यस्तम्	= बँटा हुआ
		ओम्	= ओम् (ॐ)

१. इस श्लोक द्वारा महावाक्यों के वाक्यार्थ को बताया है। वाक्यार्थ ज्ञान से सारे द्वैत को बाधित करके अद्वैत में स्थिति कराके भगवान् शङ्कर प्राणियों को अभय बना देते हैं क्योंकि श्रुति कहती है कि "द्वितीयाद्वै भयं भवति" (दूसरे से ही भय होता है) और "अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि" (अद्वैत ज्ञान के द्वारा हे जनक ! तू भयरहित हो गया)।

इति = यह
पदम् = शब्द,
त्रयीम् = (ऋक् यजुः और साम यह तीन) वेद
तिस्रः = तीन
वृत्तीः = अवस्थाएँ (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति एवं इनके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ)
त्रिभुवनम् = तीन लोक (भूः, भुवः और स्वः एवं इनके अभिमानी विराट् हिरण्यगर्भ और अव्याकृत),
त्रीन् = तीन
सुरान् = देवता (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र एवं इनके कार्य सृष्टि, स्थिति और प्रलय),
अथो = अध्यात्म; अधिदैव अधिभूत आदि सभी भेदों में
व्यस्तं त्वाम् = (बटे हुए) आप के रूप को
तिस्रः वृत्ति = (शक्ति वृत्ति से वाच्यार्थ का) वर्णन करता हुआ
अपि = भी
समस्यम् = (अकार[1] उकार और मकार भेद से रहित) अखण्ड(ॐ) रूप से
अणुभिः = सूक्ष्म सूक्ष्मतर सूक्ष्मतम आदि
ध्वनिभिः[2] = अर्ध माता की ध्वनियों से

१. अकार का अर्थ ऋग्वेद, जाग्रदवस्था, भूर्लोक और ब्रह्मा है। उकार का अर्थ यजुर्वेद, स्वप्नावस्था, भुवर्लोक और विष्णु है। मकार का अर्थ सामवेद, सुषुप्ति, स्वर्लोक और महेश्वर है।

२. यद्यपि अर्धमात्रा में कोई भेद नहीं है तथापि दीर्घकाल तक प्लुतोच्चारण से भेद प्रतीत होता है। इस श्लोक का विषय अतिगूढ़ है और गुरु कृपा से ही जाना जा सकता है। जिज्ञासु पुरुषों को माण्डूक्योपनिषद, गौडपादाचार्यकृत-कारिका, पञ्चीकरण वार्तिक आदि ग्रन्थों को गुरुमुख से पढ़ना चाहिए।

अवरुन्धानम्	= जहत् अजहत् लक्षणावृत्ति से लक्ष्यार्थ का वर्णन करते हुए	तुरीयम्	= रहित शुद्ध सारी त्रिपुटियों से परे
ते	= आपके	समस्तम्	= अखण्डार्थं
तीर्णविकृति	= सारे विकारों से	धाम	= स्वरूप को
		गृणाति	= बतलाता है।

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहाँ-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव ! श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः अथ उग्रः सहमहान्
तथा भीमेशानौ इति यत् अभिधानाष्टकम् इदम् ।
अमुष्मिन् प्रत्येकम् प्रविचरति देव ! श्रुतिः अपि
प्रियाय अस्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्यः अस्मि भवते ॥

देव !	= हे स्वयं प्रकाशरूप	उग्रः	= उग्र (प्रचण्ड ज्ञानाग्नि),
भवः	= भव (संसार का स्रष्टा),	सहमहान्	= महादेव
सर्वः	= सर्व (भक्त सुख-दायक),	तथा	= तथा
रुद्रः	= रुद्र (दुष्टों को रुलाने वाला),	भीमेशानौ	= भीम (पापियों के लिए भयंकर), ईशान (संसार का शासक)
पशुपतिः	= पशुपति (संसार का मालिक।	इति	= इतने
अथ	= और	इदम्	= ये

यत् = जो		अस्मै = ऐसे (स्वप्रकाश रूप से सर्वदा प्रत्यक्ष)	
अभिधानाष्टकम् = आठ नाम,		धाम्ने = सबके शरण,	
अमुष्मिन् = इनमें से		प्रियाय = परमप्रिय	
प्रत्येकम् = एक-एक नाम का		भवते = आपको	
श्रुतिः = वेद,		प्रणिहित-नमस्य = वाणी, मन और शरीर से नमस्कार करता	
अपि = स्मृति, पुराण इतिहासादि		अस्मि = हूँ।	
प्रविचरति = सर्वोत्कृष्टतया बोध कराते हैं।			

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव ! दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर ! महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन ! यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमितिसर्वाय च नमः ॥२९॥

प्रियदव ! = हे निर्जन प्रदेश विहार रसिक !	नमः नमस्का = र है।
ते = आपके	स्मरहर ! = हे कामदेव को नाश करनेवाले !
नेदिष्ठाय = अत्यन्त निकट रहने वाले स्वरूप को	क्षोदिष्ठाय = (आपके) परम लघुरूप को
नमः = नमस्कार है,	नमः = नमस्कार है,
च = और	च = और
दविष्ठाय = अत्यन्त दूर रहने वाले स्वरूप को	महिष्ठाय = परम महान्रूप को
	नमः = नमस्कार है।

१. पूर्वमन्त्र में प्रणवरूप से भगवान् की उपासना बताई। उसमें अनधिकारी मन्दाधिकारी के लिए इन मन्त्रों द्वारा उपासना बताई।

त्रिनयन = हे तीनों आँखों वाले !
वर्षिष्ठाय = (आपके) सबसे अधिक बूढ़े रूप को
नमः = नमस्कार है ।
च = और
यविष्ठाय = सबसे अधिक युवा-रूप को
नमः = नमस्कार है ।
सर्वस्मै = सर्वरूप (आप) को
नमः = नमस्कार है,
च = और
तदिदमिति-सर्वाय = परोक्ष-अपरोक्ष सब तरह से अनिर्वचनीय आपके रूप को
नमः = नमस्कार है ![1]

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

विश्वोत्पत्तौ = संसार की उत्पत्ति के लिए
बहुलरजसे = तमोगुण और सत्त्व गुणसे अधिक होगया है रजोगुण जिनका
भवाय = उन भवमूर्ति ब्रह्मा जी को
नमो नमः = वार-बार नमस्कार है ।
तत्संहारे = संसार के संहार करने के लिए
प्रबलतमसे = सत्त्व और रजोगुणों से नहीं दब सके ऐसे तमोगुण वाले
हराय = हर मूर्ति रुद्रजी को
नमो नमः = वार-बार नमस्कार है ।

---

१. इसमें भगवान् की अनिर्वचनीयता का वर्णन किया गया है । भगवान् ही संसार में सब रूपों से प्रकाशित हो रहे हैं और भगवान् ही इन सबसे परे इन सबके अधिष्ठान रूप से भी प्रकाशित हो रहे हैं ।

जनसुखकृते = लोगों के सुख के लिए
सत्त्वोद्रिक्तौ = रजोगुण और तमोगुण से सत्त्वगुण के बढ़ जाने पर
मृडाय = मृडरूप विष्णु जी को
नमो नमः = वार-वार नमस्कार है।
निस्त्रैगुण्ये = तीनों गुणोंसे अछूत
पदे = पद की प्राप्ति के लिए
प्रमहसि = माया से शुन्य शुद्ध चैतन्य रूप
शिवाय = सदाशिव आपको
नमो नमः = बार-बार नमस्कार है।[1]

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यम् क्व च इदम्
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वत् ऋद्धिः।
इति चकितम् अमन्दीकृत्य माम् भक्तिः आधात्
वरद! चरणयोः ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥

वरद! = हे मोक्ष देने वाले!
क्व = कहाँ
च = तो
इदम् = यह (मेरा)
कृशपरिणति = थोड़े से विषयों को जानने वाला
क्लेशवश्यम् = हमेशा ही राग-द्वेषादि हजारों दोषों से भरा हुआ
चेतः = मन

१. चतुर्थ श्लोक के "तिसृषु गुणाभिन्नासु तनुषु" की यहाँ व्याख्या की गयी है। भगवान् शङ्कर ही गुण और गुणरहित के भेद से ब्रह्मादिक बने हैं।

च	=	और
क्व	=	कहाँ
तव	=	आपकी
गुणसीमोल्लंघिनी	=	अनन्त गुणों वाली असीम
शश्वत्	=	(और) हमेशा रहने वाली
ऋद्धिः	=	महिमा ओर ऐश्वर्य
इति	=	इससे
चकितम्	=	डरे हुए

माम्	=	मुझ को
अमन्दीकृत्य	=	बल से स्तुति कराने में लगाकर
भक्तिः	=	आपकी भक्ति ने
ते	=	आपके
चरणयोः	=	चरणों में
वाक्यपुष्पो[1]-पहारम्	=	वाक्य रूपी फूल की भेंट
आधात्	=	चढ़ाया ।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनीं पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

असितगिरिसमम् स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनीम् पत्रम् उर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तत् अपि तव गुणानाम् ईश ! पारम् न याति ॥

---

१. जैसे फूल अपने प्रेमी भौंरों को तो सुगन्ध और मधु दोनों ही देता है परन्तु रास्ते जाने वाले को भी सुगन्ध तो दे ही देता है। वैसे ही यह स्तोत्र शिवभक्तों को श्रवणसुख, भोग एवं मोक्ष सभी देता है, परन्तु अभक्तों को भी श्रवणसुख तो देता ही है। इसीलिए फूल से तुलना की गयी है।

ईश ! = हे सबको अपने शासन में रखने वाले !
यदि = अगर
असित-गिरिसमम् = काले पहाड़ के जितनी
कज्जलम् = स्याही
सिन्धुपात्रे = समुद्र रूपी दवात में (घोलकर, तथा)
उर्वी = समस्त पृथ्वी रूप
पत्रम् = कागज
स्यात् = हो और उसपर,
शारदा = (यदि स्वयं) सरस्वती

सुरतरु-वरशाखा = कल्पवृक्ष रूप
लेखनीम् = कलम को
गृहीत्वा = लेकर
सर्वकालम् = निरन्तर और काल की समाप्ति तक
लिखति = लिखति रहे
तदा = तो
अपि = भी
तव = आपके
गुणानाम् = गुणों का
पारम् = अन्त
न = नहीं
याति[1] = आयेगा

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः
ग्रथितगुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः
रुचिरम् अलघुवृत्तैः स्तोत्रम् एतत् चकार ॥

---

१. भावार्थ यह है कि इतनी असम्भावित सामग्री भी इकट्ठी हो जावे तो भी महादेव के अनन्त गुणों का पार नहीं पावेंगे ।

२. गुणवरिष्ठः पाठ भेद है ।

सकलगण-वरिष्ठः	=	शंकर के सेवकों में सर्वश्रेष्ठ	इन्दुमौलेः	=	भगवान् चन्द्रशेखर की
पुष्पदन्ताभिधानः	=	पुष्पदन्ताचार्य नाम के गन्धर्व ने	ग्रथितगुण-महिम्नः	=	गुणों से गुम्फित महिमा वाले
असुरसुर-मुनीन्द्रैः	=	प्रमुख राक्षस, देवता और मुनियों द्वारा	एतत्	=	इस
			रुचिरम्	=	मनोरम
अर्चितस्य	=	पूजा किये हुए,	स्तोत्रम्	=	स्त्रोत्र को
निर्गुणस्य		सर्वगुणों से रहित,	अलघुवृत्तैः	=	बड़े (शिखरिणी) छन्दों से युक्त
ईश्वरस्य	=	सर्व संसार के परम अधिनायक	चकार	=	बनाया है।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥

अहरहः अनवद्यम् धूर्जटेः स्तोत्रम् एतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
सः भवति शिवलोके रुद्रतुल्यः तथा अत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमान् च ॥

यः	=	जो	एतत्	=	इस
पुमान्	=	मनुष्य	अनवद्यम्	=	दोषरहित
परमभक्त्या	=	परा भक्ति से	स्तोत्रम्	=	स्तोत्र को
शुद्धचित्तः	=	मन को शुद्ध करके	अहरहः	=	(दिन) प्रतिदिन
धुर्जटेः	=	त्रिलोकीनाथ शङ्कर के	पठति	=	पढ़ता है,
			सः	=	वह

अत्र	= इस लोक में	तथा	= तथा
प्रचुरतर-धनायुः	= खूब धन और लम्बी उमर वाला	शिवलोके	= (मरने के बाद) कैलास में
पुत्रवान्	= पुत्रादि कुटुम्ब वाला	रुद्रतुल्यः	= सायुज्य मुक्ति प्राप्त करने वाला
च	= और		
कीर्तिमान्	= यशवाला	भवति	= होता है।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थ-स्नानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५॥

दीक्षा	= व्रत	महिम्नःस्तव-पाठस्य	= महिम्न स्तोत्र पाठ की।
दानम्	= धन का दान,	षोडशीम्	= सोलहवीं
तपः	= शारीरिक तप,	कलाम्	= कला के भी (रुपये में एक आना)
तीर्थस्नानम्	= तीर्थ में स्नान,		
यागादिकाः	= यज्ञ पूजा वगैरह सभी		
क्रियाः	= क्रियाएँ	न अर्हन्ति	= योग्य नहीं है।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं सर्वमीश्वरवर्णनम्।
अनौपम्यं मनोहारि पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ॥३६॥

इदम्	= य (उपस्थित)	गन्धर्व-भाषितम्	= गन्धर्व द्वारा कहा हुआ,
अनौपम्यम्	= सभी स्तोत्रोंसे महान्	शिवम्	= कल्याणकारी
मनोहारि	= मनको हरने वाला,		
पुण्यम्	= पवित्र,	स्तोत्रम्	= स्तोत्र
ईश्वरवणनम्	= ईश्वर की महिमा के वर्णन से युक्त	आसमाप्तम्	= पूर्ण रूप से समाप्त हो गया।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्[१] ॥३७॥

महेशात् न अपरः देव महिम्नः न अपरा स्तुतिः ।
अघोरात् न अपरः मन्त्रः न अस्ति तत्त्वम् गुरोः परम् ॥

महेशात्	= भगवान् महेश से	अपरः	= कोई अन्य
अपरः	= भिन्न	मन्त्रः	= मन्त्र
देवः	= कोई देवता	न	= नहीं है ।
न	= नहीं है ।	गुरोः	= गुरु से
महिम्नः	= महिम्न से बढ़कर	परम्	= श्रेष्ठ
अपरा	= दूसरा	तत्त्वम्	= कोई तत्त्व
स्तुतिः	= स्तोत्र	न	= नहीं
न	= नहीं	अस्ति	= है ।
अघोरात्	= अघोर से बड़ा		

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशि[२]धरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

सः	= उस प्रसिद्ध	राजः	राजा ने,
कुसुमदशन-नामा	= पुष्पदन्त नाम-वाले	शिशुशशधर-मौलेः	= द्वितीया के चन्द्रमा को सिर पर धारण किये हुए
सर्वगन्धर्व-	= सब गन्धर्वों के		

---

१. कुछ प्राचीन साम्प्रदायिक टीकाकारों के अनुसार श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्र यहीं सम्पूर्ण हो जाता है । इसके आगे फल बोधक वचन हैं ।

२. शशिधर पाठ भेद है ।

देवदेवस्य	= देवाधिदेव महादेवके	खलु	= ऐसा सुना जाता है कि
दासः	= दास ने,	इदम्	= इस
अस्य	= उन महादेव के	दिव्यदिव्यम्	= सुन्दर और पवित्र
रोषात्[1]	= गुस्से से	महिम्नः	= महिमा के
एव	= ही	स्तवनम्	= स्तोत्र को
निजमहिम्नः	= अपनी महिमा से	अकार्षीत्	= बनाया है।
भ्रष्टः	= गिरकर		

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

सुरवरमुनिपूज्यम् स्वर्गमोक्षैकहेतुम्
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिः न अन्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपम् किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनम् इदम् अमोघम् पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥

यदि	= अगर	प्राञ्जलिः	= (और) हाथ जोड़कर
न अन्यचेताः	= एकाग्रचित होकर		

---

१. पुष्पदन्त एक राजा के यहाँ प्रतिदिन फूल चुराने आया करते थे। लेकिन उसमें अदृश्य होने की शक्ति होने के कारण उन्हें कोई पकड़ नहीं सकता था। अन्त में तंग आकर राजा ने बगीचे के फाटक पर शिवनिर्माल्य फैला दिया। पुष्पदन्त के पैर उस पर पड़े और उस अपराध के कारण उनकी अन्तर्हित होने की शक्ति नष्ट हो गयी। ध्यान के द्वारा पता लगने पर उन्होंने महेश की स्तुति इसी "शिवमहिम्नःस्तोत्र" से की जिससे आशुतोष ने इनको क्षमा करके इनकी शक्ति इनको वापस दे दी। ऐसी कथा प्रसिद्ध है।

मनुष्यः	= (कोई) मानव	अमोघम्	= कभी व्यर्थ न जाने वाले
सुरवरमुनि-पूज्यम्	= श्रेष्ठ देवताओं और मननशील संन्यासियों द्वारा प्रशंसित,	स्तवनम्	= स्तोत्र को
		पठति	= पढ़ता है,
स्वर्गमोक्षैक-हेतुम्	= स्वर्ग और मोक्ष दोनों का एक ही कारण	किन्नरैः	= (तो वह आदमी) किन्नरों से
		स्तूयमानः	= प्रशंसा प्राप्त करता हुआ
पुष्पदन्त-प्रणीतम्	= पुष्पदन्त के बनाये हुए	शिवसमीपम्	= शिवजी के समीप
इदम्	= इस	व्रजति	= चला जाता है।

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हर प्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

कण्ठस्थितेन[1]	= कण्ठ करके (याद करके)	निर्गतेन	निकले हुए,
समाहितेन	= मन को भगवान् में एकाग्र भाव से लगाकर	किल्विषहरेण	= देह, वाणी और मन से किये हुए सारे पापों को नष्ट करने वाले
पठितेन	= पढ़ने से	हरप्रियेण	= संसार के दुःखों को हरने वाले भगवान् शंकर को प्रिय,
श्रीपुष्पदन्त-मुखपङ्कज-	= श्रद्धेय पुष्पदन्त के मुखरूपी कमल से		

१. जब केवल पढ़ने का यह फल है तो अर्थ सहित मनन तो साक्षात् मोक्ष देगा इसमें शंका ही क्या है।

स्तोत्रेण = (इस) स्तोत्र से
भूतपतिः = जो कुछ है, हुआ है और होगा उस सबके स्वामी
महेशः = भगवान् महेश
सुप्रीणितः = खूब प्रसन्न
भवति = होते हैं।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४१॥

इति = इस प्रकार
एषा = यह
वाङ्मयी = (शब्दों द्वारा की हुई) शब्दमयी
पूजा = पूजा (भेंट)
श्रीमच्छङ्कर-पादयोः = महान् महिमा वाले भगवान् शंकर के चरणों में
अर्पिता = चढ़ाई।
तेन = इससे
देवेशः = समस्त देवताओं के शासक
सदाशिवः = नित्यमङ्गलमय भगवान् शंकर
मे = मुझ पर
प्रीयताम् = प्रसन्न हों।

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव ! प्रसीद परमेश्वर ! ॥४२॥

देव ! = हे सर्व प्रकाशक परमात्मा !
यत् = (प्रमाद से) जो
अक्षरम् = अक्षर
पदम् = (या) शब्द
भ्रष्टम् = छूट गया (हो)
च = और
यत् = जो
मात्राहीनम् = मात्रा न बोली
भवेत् = हो
तत् = वह
सर्वम् = सब

क्षम्यताम्	= क्षमा कीजिये ।	प्रसीद	= (मेरे ऊपर) प्रसन्न हों ।
परमेश्वर !	= हे शङ्कर !		

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इति श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचितं श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

ॐ महादेव शिवशंकर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे ।
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन् गङ्गाधर मृड मदनारे ॥
हर शिव शङ्कर गौरीशं वन्दे गङ्गाधरमीशम् ।
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरीनाथम् ॥
जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो ।
जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो ॥

शरणं मे भवः शम्भुः शरणं गिरिजा शिवा ।
शरणं श्रीगुरोः पादः शरणं नान्यदेव हि ॥

श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्

ॐ विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥१॥

(इसका अर्थ पृष्ठ १३ में देखिये)

बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुन-
र्मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम् ।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥२॥

बीजस्य अन्तः इव अङ्कुरः जगत् इदं प्राक् निर्विकल्पं पुनः
माया - कल्पित - देश - काल - कलना - वैचित्र्य - चित्रीकृतम्
मायावी इव विजृम्भयति अपि महायोगी इव यः स्वेच्छया तस्मै०....

बीजस्य	= बीज के		इदम्	= यह (समस्त)
अन्तः	= भीतर		जगत्	= संसार
अङ्कुरः	= (छिपे हुए पत्ते, फल शाखा आदि सहित वृक्ष के) अंकुर		प्राक्	= उत्पत्ति से पहले
इव	= की तरह		निर्विकल्पम्	= भोक्ता भोग्यादि भेदों से रहित था
			पुनः	= फिर

अपि = भी
मायाकल्पित-देश-काल-कलना-वैचित्र्य चित्रीकृतम् = माया द्वारा देश काल के निर्माण से विचित्रताओं से चित्रित (उसी जगत् को व्यक्त रूप से)
यः = जो (परमेश्वर)
मायावी इव = ऐन्द्रजालिक की तरह
महायोगी इव = (या) महायोगी की तरह
स्वेच्छया = अपनी इच्छा मात्र से
विजृम्भयति[1] = उत्पन्न करता है
तस्मै० = उस गुरुरूपधारी भगवान् श्रीदक्षिणामूर्ति को यह नमस्कार है।

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ।।३।।

यस्य एव स्फुरणं सदात्मकं असत्कल्पार्थकं भासते साक्षात् तत्त्वमसि इति वेदवचसा यः बोधयति आश्रितान् यत् साक्षात्करणात् भवेत् न पुनः आवृत्तिः भवाम्भोनिधौ तस्मै०....

---

१. कार्य, कारण में अव्यक्त भाव से स्थित रहता है, अन्यथा उनकी अभिव्यक्तिरूपी उत्पत्ति असम्भव है। सारा जगत् इसी प्रकार से महेश्वर में अव्यक्त भाव से वर्तमान है। कार्य व कारण का भेद-अभेद भेदाभेद आदि सम्बन्ध असम्भव है। इसका विस्तृत एवं औपपत्तिक वर्णन माण्डूक्योपनिषद्-कारिका एवं खण्डनखण्डखाद्य में देखना चाहिए। जैसे योगी या ऐन्द्रजालिक किसी अन्य कारण के बिना ही सृष्टि करने में समर्थ है इसी प्रकार महेश्वर भी अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है।

यस्य	=	जिसका
सदात्मकम्[1]	=	सत् रूप
स्फुरणं एव	=	भान ही
असत्-कल्पार्थकं	=	मिथ्या पदार्थों को
भासते	=	प्रकाशित करता है,
यः	=	जो
आश्रितान्	=	शरण में आये हुए को
तत्त्वमसि	=	"वह तुम हो"
इति वेद-वचसा	=	इस प्रकार के (जीव ब्रह्म की एकता के प्रतिपादक वैदिक महावाक्यों से)
साक्षात्	=	अपरोक्ष
बोधयति	=	ज्ञान प्रदान करते हैं,
यत्साक्षात्कार-णात्	=	जिसके साक्षात्कार से
भवाम्भोनिधौ	=	संसार समुद्र में
पुनः	=	फिर
आवृतिः	=	लौटना
न	=	नहीं
भवेत्	=	होता
तस्मै०	=	उस.........भगवान् को नमस्कार है।

---

१. पदार्थ वस्तुत आलोक से निराच्छादित अनुभूत नहीं है।

हम तो सदा आँखों से पदार्थाकार प्रकाश को ही देखते हैं। प्रकाश के भान से ही पदार्थों का भान है। इसी प्रकार सत्ता के भान के बिना प्रकाशादि का भान भी असम्भव है। अतः सत्ता युक्त ही पदार्थों का भान होने के कारण सद्रूप भान पदार्थों का ज्ञापक है।

महेश्वर की अनन्यशरणता ही शास्त्रों में ज्ञान का उत्कृष्ट साधन मानी गयी है। महेश्वर ही गुरुरूप से प्रकट हो शिष्य को ज्ञान कराते हैं। गुरु में महेश्वर का प्रादुर्भाव या महेश्वर का गुरुरूपधारण दोनों ही प्रकार से एकमात्र परमेश्वर ही ज्ञानदाता सिद्ध होता है। शरण में अनन्यता समस्त साधनों के अन्तस्त्याग एवं यथोचित बाह्यत्याग से ही सम्भव है। श्रीदक्षिणामूर्ति ही भगवान् का वह स्वरूप है जो ब्रह्मज्ञानोपदेश से जीव को कृतार्थ करता है और वह ज्ञान ही मोक्ष का एकमात्र साधन है।

नानाच्छिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तञ्जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥४॥

नाना - च्छिद्र - घटोदर - स्थित - महादीप - प्रभा - भास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुः आदि करणद्वारा बहिः स्पन्दते
जानामि इति तमेव भान्तं अनु भाति एतत् समस्तं जगत् तस्मै०....

नाना-च्छिद्र-घटोदरस्थित-महादीप-प्रभा-भास्वरं	= अनेक छेदवाले घड़े में रखे हुए बड़े दीपक की रोशनी की तरह तमोनाशक	तम् एव	= जिसके ही
यस्य ज्ञानं	= जिसका ज्ञान	भान्तम्	= प्रकाशमान होने से
चक्षुः-आदि	= आँख कान आदि	अनु	= पीछे (फलस्वरूप)
करण-द्वारा	इन्द्रियों के छेदों द्वारा	एतत्	= यह
वहिः	= बाहर (विषय प्रदेश में)	समस्तं	= सारा
स्पन्दते	= जाता है	जगत्	= संसार
तु	= एवं	भाति	= प्रकाशित होता है
		इति	= ऐसा
		जानामि	= मैं जानता हूँ
		तस्मै०	= उस....भगवान् को नमस्कार है।

१. भ्रान्ति से लोग घटपटादि का ज्ञान बाहर से आता है ऐसा मानते हैं। पर वस्तुतः जडपदार्थं चैतन्य में कैसे प्रविष्ट हो सकता है ? जड चेतन का सम्बन्ध किसी भी युक्ति से सम्भव नहीं है। अतः विज्ञानवादी केवल संवित् (ज्ञान) ही उभयरूप से प्रतीत होता है ऐसा मानते हैं। ऐसा मानने पर तो स्वप्न और जाग्रत् में कोई भेद ही नहीं रह जायगा। अतः वेदान्त ने

देहम्प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृशं वादिनः ।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥५॥

देहं प्राणं अपि इन्द्रियाणि अपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्री-बाल-अन्ध-जड-उपमाः तु अहं-इति भ्रान्ताः भृशं वादिनः
माया-शक्ति-विलास-कल्पित-महाव्यामोह-संहारिणे तस्मै०....

स्त्री-बाल	=	स्त्री, बालक, अंधे
अन्ध-जड		या जडमूर्ख की
उपमाः		विवेक रहितता के समान
भृशं	=	अत्यन्त
भ्रान्ताः	=	भ्रम में पड़े हुए
वादिनः तु	=	वादी लोग तो
देहं	=	स्थूलशरीर को
प्राणं	=	प्राण को
अपि	=	और
चलां बुद्धिं	=	क्षणिक विज्ञान को
च	=	एवं
शून्यं	=	अभाव को (ही)
अहं-इति	=	"मैं" इस रूप से (आत्मारूपसे)
विदुः	=	समझते हैं, (पर)

दोनों का मिथ्या सम्बन्ध स्वीकार किया है एवं जडपदार्थ मन में, चैतन्य के प्रतिविम्ब से युक्त होकर, चैतन्यवत् भान होने की शक्ति स्वीकार की है। इस मन का जड होने के कारण घटपटादि जडपदार्थ से सम्बन्ध भी बन जाता है एवं घटादि आकार का मन में चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ने से ज्ञान भी हो जाता है। न तो विम्ब-चैतन्य में कोई विकार आता है और न जाग्रत और स्वप्न का भेद मिटता है। प्रतिबिम्ब का मिथ्यात्व तो सिद्ध है ही अतः प्रतिबिम्बित चैतन्य ही इन्द्रियों से संबद्ध प्रतीत होता है और विषय देश में जाता है।

माया-शक्ति-	= माया रूपी शक्ति के	संहारिणे	नाश करने वाले
विलास-कल्पित-	विस्तार से व्यक्त	तस्मै०	= उस····भगवान् को
महाव्यामोह-	इस महान् भ्रम को		नमस्कार है।[1]

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान् ।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥६॥

राहुग्रस्त - दिवाकर - इन्दु-सदृशः माया-समाच्छादनात्
सन्मात्रः करण-उपसंहरणतः यः अभूत् सुषुप्तः पुमान्
प्राक् अस्वाप्सं इति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते तस्मै०····

राहुग्रस्त-	= ग्रहण में राहु से	कारण-उप-	= इन्द्रियों के लीन
दिवाकर-	छिपे सूर्य चन्द्रमा	संहरणतः	हो जाने से
इन्दु-सदृशः	की तरह	सुषुप्तः	= सो जाने पर
मायासमा-	= माया से छिप जाने	सन्मात्रः	= केवल सद्रूप
च्छादनात्	के कारण	अभूत्	= था
यः	= जो	(पुनः)	= फिर
पुमान्	= पुरुष (परमेश्वर)	यः	= जो (वही परमेश्वर)

---

१. आत्मा चेतन है । देह, इन्द्रिय, मन अभाव आदि माया के कार्य होने के कारण जड़ हैं, अतः अनात्मा हैं, तथापि विचार न करने वाले विचाराभिमानी इन्हें आत्मा मान बैठते हैं । श्रीदक्षिणामूर्ति ही इस अज्ञान को नष्ट करने में समर्थ हैं ।

प्रबोध समये	= उठने के बाद		इस प्रकार
प्राक् अस्वाप्सं इति	"मैं पहले सोया था (वही मैं अब जाग रहा हूँ)"	प्रत्यभिज्ञायते[1]	= याद करता है
		तस्मै०	= उस" "भगवान् को नमस्कार है

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा ।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥७॥

बाल्यादिषु अपि जाग्रदादिषु तथा सर्वासु अवस्थासु अपि
व्यावृत्तासु अनुवर्तमानं अहमिति अन्तः स्फुरन्तं सदा
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया तस्मै०....

यः	= जो परमेश्वर	व्यावृत्तासु	= भिन्न भिन्न
बाल्यादिषु	= बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़ादि	सर्वासु	= सब
		अवस्थासु	= अवस्थाओं में
अपि	= एवं	अपि	= भी
जाग्रदादिषु	= जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा-मुमूर्षा आदि	अनुवर्तमानं	= रहता हुआ
		अहमिति	= "मैं" इस रूप से
		सदा	= हमेशा
तथा	= एवं	अन्तः	= अन्दर

---

१. स्मर्ता और अनुभविता एक ही हो सकते हैं । अतः जाग्रत् में जो सुषुप्ति और स्वप्न का स्मर्ता है वह ही उनका अनुभविता भी है । यह प्रत्यभिज्ञा ही विश्व, तैजस व प्राज्ञ की एकता में प्रमाण है ।

स्फुरन्तं	=	भान होने वाले	भजतां	=	अपने भक्तों को
स्वात्मानं	=	अपने आत्म-स्वरूप को	प्रकटीकरोति	=	प्रत्यक्ष कराता है
भद्रया[1] मुद्रया	=	शुभ चिन्मुद्रा से	तस्मै०	=	उस''''भगवान् को को नमस्कार है

विश्वम्पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः ।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामितस्-
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥८॥

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्व-स्वामि-संबन्धतः
शिष्य-आचार्यतया तथा एव पितृ-पुत्र-आदि-आत्मना भेदतः
स्वप्ने जाग्रति वा यः एष पुरुषः माया-परिभ्रामितः तस्मै०''''

मायापरि-भ्रामितः	=	माया से भ्रम में पड़ा हुआ			भासित होनेवाला, यह
यः	=	जो	पुरुषः	=	परमेश्वर
एष	=	(सब प्राणियों को अपरोक्षरूप से	कार्य-कारण-तया	=	कार्य और कारण के (द्वैत) रूप से,

---

१. प्रत्येक जीव अहंता में जिस चित् सत्ता का अनुभव करता है वही श्री दक्षिणामूर्ति की भद्रामुद्रा (या चिन्मुद्रा) में बताया गया है । अंगुष्ठरूपी परमेश्वर एवं तर्जनी रूपी जीव की एकता ही आत्मा के अपरोक्षत्व और अपरिच्छिन्नत्व का प्रतिपादन करती है ।

स्वं-स्वामि-[1] सम्बन्धतः	= मालिक और नौकर रूप से	एव	= ही
शिष्य-आचार्यतया	= गुरु और शिष्य रूप से	विश्वं	= संसार को
तथा	= एवं	स्वप्ने	= स्वप्न में
पितृ पुत्र-आदि-आत्मना	= पिता और पुत्रादि रूप से	वा	= या
भेदतः	= अनेक भेद रूप से	जाग्रति	= जाग्रत् में
		पश्यति	= देखता है
		तस्मै:०	= उस....भगवान् को नमस्कार है।

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत्किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभोस्-
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥९॥

भूः अंभांसि अनलः अनिलः अम्बरं अहर्नाथः हिमांशुः पुमान्
इति आभाति चराचरात्मकं इदं यस्य एव मूर्त्यष्टकम्
न अन्यत् किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्मात् विभोः तस्मै०

यस्य	= जिस (परमेश्वर) की	इदं	= इस
मूर्त्यष्टकम्	= आठ विग्रह मूर्तियाँ	चराचरात्मकं	= जड और चैतन्य रूप से
एव	= ही	भूः	= जमीन

१. सारे सम्बन्ध और सम्बन्धी अखण्ड परमात्मा में ही कल्पित हैं। वस्तुतः स्वप्न में बछड़ा, गाय और उनका जन्य-जनक, सम्बन्ध सभी मनः कल्पित हैं। इसी प्रकार जाग्रत् में भी समझना चाहिए। दृश्यत्व; सत्यत्व प्रतीति, कार्य-निर्वाहकत्वादि तो सर्वत्र समान है।

अंभांसि	= पानी,		विमृशतां	= विचारशीलों को
अनलः	= आग,		यस्मात्	= जिस
अनिलः	= हवा		विभोः	= व्यापक
अम्बरं	= आकाश,		परस्मात्	= परमेश्वर से
अहर्नाथः	= दिनस्वामी (सूर्य)		अन्यत्	= भिन्न
हिमांशुः	= चन्द्रः,		किञ्चित्	= कुछ भी
पुमान्	= आत्मा,		न विद्यते	= नहीं है
इति	= इन रूपों से		तस्मै०	= उस''''भगवान को नमस्कार है
आभाति	= अनुभव में आती है (परन्तु)			

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिंस्तवे
तेनास्य श्रवणात्तथार्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तनात् ।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिद्ध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ॥१०॥

सर्वात्मत्वं इति स्फुटीकृतं इदं यस्मात् अमुष्मिन् स्तवे
तेन अस्य श्रवणात् तथा अर्थमननात् ध्यानात् च संकीर्तनात्
सर्वात्मत्व - महा - विभूति - संहितं स्यात् ईश्वरत्वं स्वतः
सिद्ध्येत् तत् पुनः अष्टधा परिणतं च ऐश्वर्यं अव्याहतम्

इति	= उक्त प्रकार से		सर्वात्मत्वं	= सर्वरूपता को
अमुष्मिन्	= इस		स्फुटीकृतं	= स्पष्ट रूपसे प्रतिपादित किया है
स्तवे	= स्तोत्र में			
यस्मात्	= चूंकि		तेन	= इसलिए
इदं	= इस		अस्य	= इस स्तोत्र के

श्रवणात् = (गुरुमुख से विधिवत्) सुनने से
तथा = एवं
अर्थमननात् = उसके अर्थ पर युक्ति पूर्वक विचार करने से,
ध्यानात् = ध्यान करने से
च = और
संकीर्तनात् = संकीर्तन करने से (पाठ या दूसरे को सुनाने से)
सर्वात्मत्व- = सर्वात्मभावरूपी
महाविभूति- = महासिद्धि के
सहितम् = साथ
तत् = श्रुतिस्मृतिप्रसिद्ध
ईश्वरत्व = सर्वेश्वरता
स्वतः = अनायास ही
स्यात् = हो जाती है
पुनः = और (फिर)
परिणतं = माया का परिणाम रूप
अष्टधा = अणिमादि आठ प्रकार का
ऐश्वर्यं = ऐश्वर्य[1]
च = भी
अव्याहतं = विना किसी रुकावट के
सिद्ध्येत् = सिद्ध हो जाता है।

---

१. उस परब्रह्म परमात्मा के लवांश ऐश्वर्य को प्राप्त कर ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि अपने-अपने कार्य को करते हैं। उस ऐश्वर्य की पूर्णता-प्राप्ति ही उदय है एवं वह ईश्वर से अभिन्न होने के कारण सिद्ध को स्वतः प्राप्त है। जब कि ब्रह्मादि भी उसके वश में हो जाते हैं तो अन्य राजादि को तो बात ही क्या ? वस्तुतस्तु घट के जल में स्थित सूर्यप्रतिबिम्ब, स्वदृष्ट्या सूर्य रूप को प्राप्त होता है; पर अन्य घटशरावादिस्थ प्रतिबिम्बों को दृष्टि में बिम्बरूप को प्राप्त होता है। इसी प्रकार जीव स्वदृष्ट्या तो सदाशिव में लीन होता है पर अन्य जीवदृष्ट्या ईश्वरप्राप्ति करता है अतः उन्हें उसमें ऐश्वर्य का भान होता है।

श्रीशिवताण्डवस्तोत्रम्

जटाटवी-गलज्जल-प्रवाहपावित-स्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् ।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥ १ ॥

जटाटवीगल-ज्जलप्रवाह-पावितस्थले	=	जटारूप अटवी (वन) में निरन्तर प्रवाहमान गंगाजल की गिरी हुई कणिकाओं से पवित्र हुए
गले	=	कण्ठ में
लम्बिताम्	=	झूलती हुई
भुजङ्गतुङ्ग-मालिकाम्	=	सर्पों की विशाल माला को
अवलम्ब्य	=	धारणकर जिसने
डमड्-डमड्-डमड्-डमन्निनादवत्	=	डमड् डमड् डमड् डमड् निनादपूर्वक
डमरु	=	डमरु बजाते हुए
चण्डताण्डवम्	=	प्रचण्ड ताण्डव नृत्य
चकार	=	किया,
अयम्	=	ये
शिवः	=	भगवान् शंकर
नः	=	हम लोगों के
शिवम्	=	कल्याण का सदा
तनोतु	=	विस्तार करें।

जटाकटाह - संभ्रम - भ्रमन्निलिंप - निर्झरी-
विलोल - वीचि - वल्लरी - विराजमान - मूर्धनि ।
धगद्धगद् - धगज्ज्वलल् - ललाटपट्ट - पावके
किशोर - चन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥ २ ॥

जटाकटाह-संभ्रभ्रमन्नि-लिंपनिर्झरी-विलोलवीची-वल्लरीविराज-मानमूर्धनि	=	भगवान् आशुतोष की जटारूपी कटाह में अत्यन्त वेग के साथ अठखेलियाँ करती हुई सुरसरिता गंगा की चञ्चल तरंगों की छटा से जिनका माल शोभायमान हो रहा है तथा

धगद्धगद्धग-ज्ज्वलल्ललाट-पट्टपावके	= धगद् धगद् धगद् शब्द करते हुए प्रज्ज्वलित अग्नि-पुञ्ज की तरह जिनका प्रशस्त तेजोमय ललाट है ऐसे	किशोरचन्द्र-शेखरे	= बालचन्द्र को धारण करने वाले सदा-शिव में
		प्रतिक्षणम्	= प्रतिक्षण
		मम	= मेरा
		रतिः	= अनुपम अनुराग
		(अस्तु)	= हो।

धरा - धरेन्द्र - नन्दिनी - विलासबन्धु - बन्धुर—
स्फुरद् - दृगन्त - सन्तति - प्रमोदमान - मानसे।
कृपा - कटाक्ष - धोरणी - निरुद्ध - दुर्धरापदि—
क्वचिद्-दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥ ३ ॥

धराधरेन्द्र-नन्दिनीविलास-बन्धुबन्धुर-स्फुरद्दृगंत-सन्तति-प्रमोदमान-मानसे	= नगाधिराज-हिमा-लय - किशोरी, पार्वती की मनो-हारिणी क्रीडाओं को देखकर नेत्रों की कोरें और खिल गयी हैं तथा जिनका हृदय अत्यन्त आह्लादित हो गया है तथा	दुर्धरापदि	मात्र से ही जिन्होंने भक्तों की अत्यन्त दुर्धर्ष जनन-मरण रूपिणी विपत्तियों को नष्ट कर दिया है ऐसे
		दिगम्बरे	= दिगम्बर-भूतेश
		वस्तुनि	= सदाशिव तत्त्वमें
		क्वचित्	= अब कुछ तो मेरा
		मनः	= मन
कृपाकटाक्ष-धोरणीनिरुद्ध-	= बिना किसी प्रयास के केवल कृपाकटाक्ष	विनोदम्	= आनन्द
		एतु	= प्राप्त करे।

जटा - भुजङ्ग - पिङ्गल - स्फुरत्फणा - मणिप्रभा-
कदम्ब - कुंकुमद्रव - प्रलिप्त - दिग्वधूमुखे।

मदान्ध - सिन्धुरासुर - त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनो विनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ॥ ४ ॥

जटाभुजंग-	= जिनकी जटाओं में	रीयमेदुरे	चादर धारण करने
पिङ्गलस्फुरत्-	लिपटे सर्पों की		के कारण जो
फणामणिप्रमा-	देदीप्यमान मणियों		अत्यन्त मनोहर लग
कदम्बकुंकुम-	का पिंगल प्रकाश-		रहे हैं ऐसे
द्रवप्रलिप्त-	पुञ्ज कुंकुमराग	भूतभर्तरि	= संसार के रक्षक
दिग्वधूमूखे	होकर मानों दसों,		भगवान् भव में
	दिशारूपिणी वधुओं	[मम]	= मेरा
	के मुख को लिप्तकर	मनः	= मन
	रहा है	अद्भुतम्	= अलौकिक
मदान्धसिन्धुर-	= मदान्ध गजासुर की	विनोदम्	= आनन्द
स्फुरत्-त्वगुत्त-	त्वचा की गुहारूपी	बिभर्तु	= प्राप्त करे।

सहस्र - लोचन - प्रभृत्यशेष - लेख - शेखर-
प्रसूनधूलि - धोरणी - विधूसरांघ्रि - पीठभूः ।
भुजङ्ग - राज - मालया निबद्ध - जाट - जूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धु - शेखरः ॥ ५ ॥

सहस्रलोचन-	= देवाधिपति ब्रह्मा-		महादेव के चरण
प्रभृत्यशेष	विष्णु-इन्द्रादि सभी		कमल रखने की
लेखशेखर-	देवताओं के सदा		पादपीठिका (अथवा
प्रसूनधूलि-	नतमस्तक होने से		पादुका) परागधूलि
धोरणीविधूस-	उनके मुकुटों में		से पट गयी है एवं
रांघ्रिपीठभूः	गुंथे हुए विविध	भुजंगराज-	= सर्पराज वासुकि
	पुष्पों के परागकणों	मालया	की माला से
	के झड़ने के कारण		जिनकी

निबद्धजाट-जूटकः	= जटायें बँधी है ऐसे	श्रियै	= धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्विध
चकोरवन्धु-शेखरः	= चन्द्रमौली	चिराय	= चिरस्थायिनी सिद्धि के साधक
(नः)	= हम लोगों की	जायताम्	= हों।

ललाट - चत्वर - ज्वलद्धनञ्जय - स्फुलिङ्गया
निपीत - पञ्चसायकं नमन्निलिप - नायकम्।
सुधा - मयूख - रेखया विराजमान - शेखरं
महाकपालि सम्पदे सरिज्जटालमस्तु नः ॥ ६ ॥

ललाटचत्वर-ज्वलद्धनञ्ज-यस्फुलिंगया	= प्रशस्त ललाट वेदी पर प्रज्ज्वलित हुई अग्नि के विस्फुलिंगों से जिसने	रेखया	किरणों से
निपीतपञ्च-सायकम्	= कामदेव को भस्म कर दिया,	विराजमान-शेखरम्	= सुशोभित मुकुट वाला
नमन्निलिम्प-नायकम्	= देवाधिपति इन्द्रादि भी जिसको सदा नमन करते हैं	जटालम्	= जटामण्डित
सुधामयूख-	= तथा अमृतमय चन्द्र	महाकपालि	= उन्नत विशाल-कपालवाला
		शिरः	= मस्तक
		नः	= हमारी
		सम्पदे	= अभिवृद्धि के लिए
		अस्तु	= हो।

कराल - भाल - पट्टिका - धगद्धगद्धगज्ज्वल—
द्धनञ्जयाहुतीकृत - प्रचण्ड - पञ्चसायके।
धराधरेन्द्र - नन्दिनी - कुचाग्र - चित्र - पत्रक—
प्रकल्पनैक - शिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम ॥ ७ ॥

करालभाल-पट्टिकाधगद्ध-	= जाज्वल्यमान ललाटपट्ट के धगद्	गद्धगज्ज्वलद्ध-नञ्जयाहुती-	धगद् धगद् शब्द करते, दहकते अग्नि

कृतप्रचण्ड-पञ्चसायके		पुञ्ज से जिन्होंने क्षणभर में प्रचण्ड कामदेव को भस्म कर दिया था,			पत्र-भङ्ग-रचना द्वारा चित्रण करने में जो एक मात्र चितेरे हैं ऐसे
धराधरेन्द्र-नन्दिनी-कुचाग्रचित्र-पत्रकप्रकल्प-नैकशिल्पिनि	=	नगाधिराज हिमालय की पुत्री पार्वती के स्तनों पर कुंकुम-केशर-चन्दन आदि सुवासित द्रव्यों से	त्रिलोचने	=	त्रिनयन सदा शिव में
			मम	=	मेरी
			रतिः	=	धारणा
			[अस्तु]	=	लगी रहे

नवीनमेघ - मण्डली - निरुद्ध - दुर्धरस्फुरत्—
कुहू - निशीथिनी - तमः प्रबन्ध - बद्धकन्धरः।
निलिंप - निर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसुन्दरः
कला - निधान - बन्धुरः श्रियं जगद् - धुरंधरः ॥ ८ ॥

नवीनमेघ-मण्डलीनिरुद्ध-दुर्धरस्फुरत्कुहू-निशीथिनी-तमःप्रबन्ध-बद्धकन्धरः	=	जिनके कण्ठ में वर्षाकालीन घन-घोर मेघों से आच्छादित अमावस्या की रात्रि के गहन अन्धकार के समान श्यामता अंकित है, जो	कलानिधान-बन्धुरः	=	चन्द्रमा की छटा से मनोहर कान्तिवाले
			कृत्तिसुन्दरः	=	गजचर्म के परिधान से अत्यन्त सुशोभित
			जगद्धुरन्धरः	=	जगन्नियन्ता
			[नः]	=	हमारे
			श्रियम्	=	लक्ष्मी-सरस्वती-धी इस श्रीरूप त्रिवर्ग का
निलिम्प-निर्झरीधरः	=	सुरनदी गंगा को धारण करने वाले हैं	तनोतु	=	विस्तार करें।

प्रफुल्ल-नीलपङ्कज - प्रपञ्चकालिमप्रभाऽ—
वलम्बिकण्ठ - कन्दली - रुचिप्रबद्ध - कन्धरम्।

स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदांधकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥ ९ ॥

प्रफुल्लनील- = नील कमल के
पङ्कजप्रपञ्च- पुञ्जों के पूर्ण
कालिम- विकसित होने से
प्रभाऽवलम्बि- जो नील छटा
कण्ठकन्दली- दिखाई देती है
रुचिप्रबद्ध- ऐसे नील कमल
कन्धरम् समूह की श्याम
प्रभा का अनुकरण
करनेवाले कृष्णमृग
(कन्दली) की सी,
छवि वाले चिह्न
से जिनकी ग्रीवा
शोभित हो रही है

ऐसे नीलकण्ठ

तम् = जो
स्मरच्छिदम् = कामान्तक
पुरच्छिदम् = त्रिपुरासुरान्तक
भवच्छिदम् = दुःखान्तक
मखच्छिदम् = दक्षयज्ञान्तक
गजच्छिद- = गजासुरान्तक
अन्धकच्छिदम् = अन्धकासुरान्तक
अन्तकच्छिदम् = कालान्तक हैं
इनकी

भजे = मैं सेवा-आराधना
करता हूँ

अखर्व - सर्वमङ्गला - कला - कदम्बमञ्जरी-
रसप्रवाह - माधुरी - विजृंभणा - मधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकांधकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥१०॥

अखर्वसर्व- = सर्वमंगलस्वरूपिणी
मङ्गलाकला- चौसठकला-विद्याओं
कदम्बमंजरी- की जो अधिष्ठात्री
रस-प्रवाह देवियाँ है, उन सबके
माधुरी- समूहरूप-वृक्षमंजरी
विजृम्भणा में सर्वत्र फैले हुए

मधुव्रतम् रस प्रवाह के
माधुर्य का जो एक
मात्र पान करने
वाला भ्रमर है—
अर्थात् भगवान्
सदाशिव चौसठ

	कलाओं के रहस्य के एकमात्र ज्ञाता हैं (अथवा सर्व मंगला पार्वती के सौन्दर्य कदम्ब-मंजरी के मकरन्द स्रोत की बढती हुई माधुरी के पान करने वाले एक मात्र भ्रमर हैं)	स्मरान्तकम्	=	मदनदाहक
		पुरान्तकम्	=	त्रिपुरासुरनाशक
		भवान्तकम्	=	संसारनाशक
		मखान्तकम्	=	दक्षयज्ञविध्वंसक
		गजान्तक-	=	गजासुरभेदक
		अन्धकान्तकम्	=	अन्धकासुरछेदक
		अन्तकान्तकम्	=	कालकृन्तक मृत्युञ्जय की
		भजे	=	मैं सेवा-आराधना करता हूँ।
तम्	= ऐसे			

जयत्यदभ्र - विभ्रम - भ्रमद्भुजङ्गमश्वसद्—
विनिर्गमक्रमस्फुरत् - करालभाल - हव्यवाट्।
धिमि धिमि धिमि ध्वनन् - मृदङ्गतुङ्ग - मङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तित - प्रचण्ड - ताण्डवः शिवः ॥११॥

अदभ्रविभ्रम- भ्रमद्भुजङ्गम- श्वसद्- विनिर्गमक्रम- स्फुरत्कराल- भालहव्यवाट्	= ताण्डव नृत्य करते समय अत्यन्त वेग से घूमने वाले सर्पों के श्वांस प्रश्वांस (फुत्कार)के कारण जिनकी भालस्थ वह्नि धधकती हुई और उद्दीप्त हो रही है एवं	धिमि ध्वनन्- मृदंगतुंग- मंगलध्वनि- क्रमप्रवर्तित- प्रचण्ड- ताण्डवः	इस प्रकार से शब्द करने वाले मृदंग के अत्यन्त कल्याण-कारी गम्भीर घोष के साथ जिन्होंने प्रचण्ड ताण्डव नृत्य प्रारम्भ किया है ऐसे
		शिवः	= नटराजराज की
धिमि धिमि	= धिमि धिमि धिमि	जयति	= जय हो।

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो—
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्‌ - विपक्ष - पक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदा सदाशिवं भजाम्यहम् ॥१२॥

दृषद्विचित्र-तल्पयोः	=	शिलातल - शय्या तथा पुष्पादि से सज्जित कोमल शय्या में,	चक्षुषोः		नयना तरुणी में,
भुजङ्ग-मौक्तिकस्रजोः	=	सर्प और मोतियों की माला में,	प्रजामही-महेन्द्रयोः	=	प्रजा और राजा में,
गरिष्ठरत्न-लोष्ठयोः	=	बहुमूल्य रत्न और मिट्टी के ढेले में,	समप्रवृत्तिकः	=	रागद्वेषादि से रहित हो अब
सुहृद्विपक्ष-पक्षयोः	=	मित्र और शत्रु में,	अहम्	=	मैं
तृणारविन्द-	=	तृण और कमल-	कदा	=	कब
			सदाशिवं	=	भूतभावन सदाशिव का
			भजामि	=	भजन-कीर्तन करूँगा ?

कदा निलिम्प - निर्झरी - निकुञ्ज - कोटरे वसन्
विमुक्त - दुर्मतिः सदा शिरस्थमञ्जलिं वहन् ।
विलोल - लोल - लोचनो ललाम-भाल-लग्नकः
शिवेति-मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१३॥

निलिम्प-निर्झरी-निकुञ्जकोटरे	=	सुरसरिता श्री गंगा के तटपर लता-प्रतान, झाड़-झंखाड़ से घिरे हुए स्थानों में	सदा	=	सदा
वसन्	=	निवास करता हुआ,	शिरस्थम्	=	सिर पर दोनों हाथों से
विमुक्तदुर्मतिः	=	कुविचारों को छोड़ा हुआ	अञ्जलिम्	=	अञ्जलि
			वहन्	=	किये हुए
			विलोललोल-लोचनः	=	डबडबाई हुई विह्वल आँखों से

ललामभाललग्नकः = शोमन प्रशस्त ललाटवाले भगवान् सोमार्धधारी में दत्तचित्त हो

"शिवे"ति- = "ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय" इस कलिमल-सन्तरण

मन्त्रमुच्चरन् = महामन्त्र का जप करता हुआ

अहम् = मैं

कदा = न जाने कब

सुखी = सुखी

भवामि = होऊँगा ?

निलिम्पनाथनागरी - कदम्बमौलि - मल्लिका-
निगुम्फ - निर्भर - क्षरन्मधूष्मिका - मनोहरः ।
तनोतु नो मनोमुदं विनोदिनीमहर्निशं
परश्रियः परं पदं तदंगजत्विषां चयः ॥१४॥

निलिम्पनाथ-नागरीकदम्ब-मौलिमल्लिका निगुम्फनिर्भर-क्षरन्मधूष्मिका-मनोहरः = भगवान् शिव के समक्ष—अलक पुरी की सुरललना अप्सराओं के नृत्य करते समय, उनकी वेणियों में मल्लिका आदि पुष्पों के गुथें हुए गुच्छों से सदा पुष्परस मकरन्द का समुद्र सा वहता रहता है जिसकी तरंगों से अत्यन्त शोभायमान है

परश्रियः = तथा भगवती पार्वती के

मनोमुदम् = मन को प्रफुल्लित करने वाला जो

परम् = परम

पदम् = पद है ऐसा

तदङ्ग-जत्विषाम् = भगवान् शंकर के अंगों से निकला हुआ

चयः = तेज समूह

अहर्निशम् = निरन्तर

विनोदिनीम् = आनन्ददायिनी

नः = हमारी

(प्रीतिम्) = प्रीति को

तनोतु = बढ़ाता रहे ।

प्रचण्ड - वाडवानल - प्रभाशुभ - प्रचारिणी-
महाष्टसिद्धि - कामिनी - जनावहूत - जल्पनः ।

विमुक्त - वामलोचना - विवाह - कालिकध्वनिः
शिवेति मन्त्रभूषणः जगज्जयाय जायताम् ॥१५॥

प्रचण्डवाडवानलप्रभाशुभप्रचारिणी = प्रलयकालीन वाडव अग्नि के समान उत्पन्न हुए अशुभ लक्षणों को जो क्षणभर में अपना ग्रास बना देने वाली है तथा

महाष्टसिद्धिकामिनीजनावहूतजल्पनः = अणिमादि अष्ट सिद्धियों से युक्त देवाङ्गनाओं द्वारा जिसका सदा कीर्तन किया जाता है और

विमुक्तवामलोचनाविवाहकालिकध्वनिः = शोभन नेत्रों वाली पर्वतराजतनया पार्वती के विवाह काल में मंगलरूप से जो गायी जाती है ऐसी

"शिवे"ति- मन्त्रभूषणः = "शिव-शिव-शिव" इस मन्त्रराज से भूषितध्वनि

जगज्जयाय = संसार दावानल से तारण करने वाली

जायताम् = हो।

इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन् स्मरन् ब्रुवन् नरो विशुद्धिमेति सन्ततम्।
हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं
विमोहनं हि देहिनां तु शङ्करस्य चिन्तनम् ॥१६॥

(यः) = जो
नरः = भक्त
एवम् = इस प्रकार
उक्तम् = कहे गये
इमम् = इस
उत्तमोत्तम- = सर्वोत्तम
स्तवम् = स्तोत्रराज का
नित्यम् = नित्य
हि = नियमपूर्वक,

पठन् = पाठ
स्मरन् = स्मरण और
ब्रुवन् = वर्णन करता
(तिष्ठति) = रहता है
(सः) = वह
सन्ततम् = सदा
विशुद्धिम् = सभी रागों से दूर हो निर्मलता को
एति = प्राप्त हो जाता है,

(तथा च) = तथा
गुरौ = देवाधिदेव
हरे = महादेव में
आशु = शीघ्र
सुभक्तिम् = तादात्म्यभाव को
(प्राप्य) = प्राप्तकर
अन्यथा = अन्य किसी प्रकार की
गतिम् = जनन-मरण गति को प्राप्त
न = नहीं
याति = होता।
तु = क्योंकि
शंकरस्य = हृदय से किया गया भगवान् शंकर का
चिन्तनम् = चिन्तन
देहिनाम् = प्राणियों को संसार पाश से
हि = निश्चय ही
विमोहनम् = छुड़ाने वाला
(भवति) = होता है।

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनपरं पठति प्रदोषे।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां
लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥१७॥

(अपि च) = और भी—
प्रदोष = सायंकाल में
पूजावसान-समये = पूजन समाप्ति के वाद
शम्भुपूजन-परम् = श्री शिवपूजन सम्बन्धी
दशवक्त्रगीतम् = शिव के परम भक्त रावण विरचित इस
(स्तोत्रम्) = स्तोत्र को
यः = जो
सदा = सदा
एव = नियमपूर्वक
पठति = पढ़ता है
तस्य = उसको
रथगजेन्द्र-तुरङ्गयुक्ताम् = रथ-हाथी-घोड़े आदि ऐश्वर्यसे युक्त
स्थिराम् = सुस्थिर
सुमुखीम् = सर्वश्रेष्ठ
लक्ष्मीम् = सम्पत्ति
शम्भुः = भगवान् शंकर
प्रददाति = देते रहते हैं।

इति श्रीदशकन्धरविरचितं शिवताण्डवस्तोत्रं समाप्तम्

श्री-अर्बुद-विश्वनाथ-प्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि सितगेहनिकेतभीमं
मोहार्तिशान्तिदं महाभवभीतिनाशम् ।
रक्ताभनीरज - विशिष्ट - विचित्रवर्णं
शैलार्बुदेश्वरमनाथ - कृपालुदेवम् ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि शिवनाम-महेशमीशं
सद्वित्सुखं पुररिपुं वृषभाधिरूढम् ।
अद्वैतवीथिपथिकैरनिशं प्रचिन्त्यं
चन्द्रादिपूजितवपुः प्रमथाधिदेवम् ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि ललिताधव-दक्षिणास्यं
भाले तृतीयनयनं शिवं निर्मलाख्यम् ।
श्रीशंकरादिमुनिवन्द्यहृदि स्थितं ते
शीर्षे जटाधरमुमार्पित विश्वनाथम् ॥ ३ ॥

श्री-अर्बुद-विश्वनाथ-ध्यानम्

गृहेऽर्जुने पीठतलेऽरुणे च
ललाटमध्ये ज्वलने स्थिते च ।
भासज्जटायां शिखरे च रक्ते
शिवेऽर्बुदस्थे मम भक्तिरस्तु ॥ १ ॥
रक्ताम्भोज - दलाभिराम - फलक - माशाम्बराऽलङ्कृतं
चित्राङ्गं शिवसुप्रसन्नवदनं भालाग्निनेत्रान्वितम् ।
कारुण्यामृतसागरं प्रियगणैः कृष्णादिभिः पूजितं
वन्दे ह्यर्बुदविश्वनाथजटिलं भक्तेषु सिद्धिप्रदम् ॥ २ ॥

श्रीशिवमानसपूजास्तोत्रम्

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम् ।
जाती-चम्पक-विल्वपत्र-रचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे! पशुपते! हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥ १ ॥
सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो! स्वीकुरु ॥ २ ॥
छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा ।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो! ॥ ३ ॥
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचरा प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥ ४ ॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे! श्री महादेव! शम्भो! ॥ ५ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीशिवमानसपूजास्तोत्रम्

श्रीविल्वाष्टकम्

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रञ्च त्रिधायुतम् ।
त्रिजन्मपापसंहारमेकविल्वं शिवार्पणम् ॥ १ ॥

त्रिशाखैर्विल्वपत्रैश्चाच्छिद्रैः कोमलैस्तथा ।
शिवपूजां करिष्यामि एकविल्वं शिवार्पणम् ॥ २ ॥
अखण्डविल्वपत्रेण पूजितं नन्दिकेश्वरम् ।
शुध्यते सर्वपापेभ्य एकविल्वं शिवार्पणम् ॥ ३ ॥
शालिग्रामशिलामेकां विप्राणां जातु अर्पयेत् ।
सोमयज्ञमहादानमेकविल्वं शिवार्पणम् ॥ ४ ॥
दन्तिकोटिसहस्राण्यश्वमेधशतानि च ।
कोटिकन्यामहादानमेकविल्वं शिवार्पणम् ॥ ५ ॥
लक्ष्म्याश्च स्तन उत्पन्नं महादेवसदाप्रियम् ।
विल्ववृक्षं प्रयच्छामि एकविल्वं शिवार्पणम् ॥ ६ ॥
दर्शनं विल्ववृक्षस्य स्पर्शनं पापनाशनम् ।
अघोरपापसंहारमेकविल्वं शिवार्पणम् ॥ ७ ॥
मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय एकविल्वं शिवार्पणम् ॥ ८ ॥
विल्वाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥

इति श्रीविल्वाष्टकं सम्पूर्णम्

श्रीसरस्वतीस्तोत्रम्

रविरुद्रपितामहविष्णुनुतं हरिचन्दनकुंकुमपंकयुतम् ।
मुनिवृन्दगणेन्द्रसमानयुतं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥
शशिशुद्धसुधाहिमधामयुतं शरदम्बरविम्बसमानकरम् ।
बहुरत्नमनोहरकान्तियुतं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥
कनकाब्ज-विभूषित - भूति-भवं भवभावविभाषित - भिन्नपदम् ।
प्रभुचित्तसमाहित - साधुपदं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥
भवसागर - मज्जन - भीतिनुतं प्रतिपादितसन्ततिकारमिदम् ।
विमलादिकशुद्धविशुद्धपदं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥

मतिहीन-जनाश्रय-पादमिदं सकलागमभाषित-भिन्नपदम् ।
परिपूरितविश्वमनेकभवं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥
परिपूर्णमनोरथधामनिधिं परमार्थ-विचार-विवेक-विधिं ।
सुरयोषित-सेवित-पादतलं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥
सुर-मौलि-मणिद्युति-शुभ्रकरं विषयादिमहाभय-वर्णहरम् ।
निजकांति-विलेपित-चन्द्रशिवं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥
गुणनैककुलं स्थितिभीतिपदं गुणगौरव-गर्वित-सत्यपदम् ।
कमलोदर-कोमल-पादतलं तव नौमि सरस्वति पादयुगम् ॥

त्रिसन्ध्यं यो जपेन्नित्यं जले वापि स्थले स्थितः ।
पाठमात्रात्भवेत्प्राज्ञो ब्रह्मनिष्ठः पुनः पुनः ॥९॥

श्रीकार्तिकेयस्तोत्रम्

स्कन्द उवाच

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयोऽग्निनन्दनः ।
स्कन्दः कुमारः सेनानीः स्वामी शंकरसम्भवः ॥ १ ॥
गाङ्गेयस्ताम्रचूडश्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः ।
तारकारिरुमापुत्रः क्रौञ्चारिश्च षडाननः ॥ २ ॥
शब्दब्रह्मसमुद्रश्च सिद्धः सारस्वतो गुहः ।
सनत्कुमारो भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः ॥ ३ ॥
शरजन्मा गणाधीशः पूर्वजो मुक्तिमार्गकृत् ।
सर्वागमप्रणेता च वाच्छितार्थप्रदर्शकः ॥ ४ ॥
अष्टाविंशतिनामानि मदीयानीति यः पठेत् ।
प्रत्यूषे श्रद्धया युक्तो मूको वाचस्पतिर्भवेत् ॥ ५ ॥
महामन्त्रमयानीति मम नामानुकीर्तनम् ।
महाप्रज्ञामवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले प्रज्ञाविवर्धनाख्यं
श्रीमत्कार्तिकेयस्तोत्रं सम्पूर्णम्

श्री-नृसिंहगिरि-महामण्डलेश्वर-

अष्टोत्तर-शतनामस्तोत्रम्

ब्रह्मवर्ण - समुद्भूतो ब्रह्ममार्ग - प्रवर्द्धकः ।
ब्रह्मज्ञान - सदासक्तो ब्रह्मज्ञान - परायणः ॥ १ ॥
शिवपंचाक्षररतो-ऽशिवज्ञान - विनाशकः ।
शिवाभिषेक - निरतः शिवपूजा - परायणः ॥ २ ॥
नारायण - प्रवचनो नारायण - परायणः ।
नारायण - प्रत्नतनुर् - नारायण - नयस्थितः ॥ ३ ॥
दक्षिणामूर्त्ति - पीठस्थो दक्षिणामूर्ति - देवतः ।
श्रीमेधादक्षिणामूर्ति - मंत्रयन्त्र - सदारतः ॥ ४ ॥
मण्डलेश्वरप्रेष्ठो मण्डलेश - वरप्रदः ।
मण्डलेश - गुरुश्रेष्ठो मण्डलेशवर - स्तुतः ॥ ५ ॥
निरञ्जन - प्रपीठस्थो निरञ्जन - विचारकः ।
निरञ्जन - सदाचारो निरञ्जन - तनुस्थितः ॥ ६ ॥
वेदविद् - वेदहृदयो वेदपाठ - प्रवर्तकः ।
वेदराद्धान्त - संविष्टो - ऽवेदपथ - प्रखण्डकः ॥ ७ ॥
शांकराद्वैत - व्याख्याता शांकराद्वैत - संस्थितः ।
शांकराद्वैत - विद्वेष्टृ - विनाशन - परायणः ॥ ८ ॥
अत्याश्रमाचाररतो भूतिधारण - तत्परः ।
सिद्धासन - समासीनो काञ्चनाभो मनोहरः ॥ ९ ॥
अक्षमाला - धृतग्रीवः काषाय - परिवेष्टितः ।
ज्ञानमुद्रा - दक्षहस्तो वामहस्त - कमण्डलुः ॥ १० ॥
संन्यासाश्रम - निर्माता परहंस - धुरन्धरः ।
संन्यासिनय - संस्कर्ता परहंस - प्रमाणकः ॥ ११ ॥
माधुर्यपूर्ण - चरितो मधुराकार - विग्रहः ।
मधुवाङ् - निग्रहरतो मधुविद्या - प्रदायकः ॥ १२ ॥

मधुरालाप - चतुरो निग्रहानुग्रह - क्षमः ।
आर्द्धरात्र - ध्यानरतस् - त्रिपुण्ड्रांकित - मस्तकः ॥ १३ ॥
आरण्यवार्तिकपरः पुष्पमाला - विभूषितः ।
वेदान्तवार्ता - निरतः प्रस्थानत्रय - भूषणः ॥ १४ ॥
सानन्दज्ञान - भाष्यादि - ग्रन्थग्रन्थि - प्रभेदकः ।
दृष्टान्तानूक्ति - कुशलो दृष्टान्तार्थ - निरूपकः ॥ १५ ॥
बीकानेर - गुरुर्वाग्मी बंगदेश - प्रपूजितः ।
लाहौर - सरगोदादौ हिन्दूधर्म - प्रचारकः ॥ १६ ॥
गणेशजय - यात्रादि - प्रतिष्ठापन - तत्परः ।
गणेश-शक्ति - सूर्येश - विष्णुभक्ति - प्रचारकः ॥ १७ ॥
सर्ववर्ण - समाम्नात - लिंगपूजा - प्रवर्द्धकः ।
गीतोत्सव - सपर्यादि - चित्रयज्ञ - प्रवर्तकः ॥ १८ ॥
लोकेश्वरानन्द - प्रियो दयानन्द-प्रसेवितः ।
आत्मानन्द - गिरि - ज्ञान - सतीर्थ - परिवेष्टितः ॥ १९ ॥
अनन्त - श्रद्धा - परम - प्रकाशानन्द-पूजितः ।
जूनापीठस्थ - रामेश - वरानन्द - गिरेर्गुरुः ॥ २० ॥
माधवानन्द - संदेष्टा काशिकानन्द - देशिकः ।
वेदान्तमूर्तिराचार्यो शान्तो दान्तः प्रभुस्सुहृत् ॥ २१ ॥
निर्ममो विश्वतरणिः स्मितास्यो निर्मलो महान् ।
तत्त्वमस्यादि - वाक्योत्थ - दिव्यज्ञान - प्रदायकः ॥ २२ ॥
गिरीशानन्द - सम्प्राप्त - परमहंस - परम्परा—
जनार्दनगिरिब्रह्म - संन्यासाश्रम - दीक्षितः ॥ २३ ॥
मण्डलेश - कुलश्रेष्ठ - जयेन्द्रपुरी - संस्तुतः ।
रामानन्द - गिरिस्थान - स्थापितो मण्डलेश्वरः ॥ २४ ॥
शंदमहेशानन्दाय स्वकीय - पददायकः ।
यतीन्द्रकृष्णानन्दैश्च पूजितपादपद्मकः ॥ २५ ॥